सत्यापन क्रमांक :
RAJHIN/2015/60530

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : १० अंक : ३ १ मार्च २०२४ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० र वार्षिक

सृष्ट्यादि से आर्यावर्त्तीय कालगणना का अकाट्य प्रमाण

महर्षि दयानन्द प्रणीत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से। विस्तार से भीतर देखें।

....वर्ष, ऋतु, अयन, मास, पक्ष, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न और पल आदि समय में हमने फलाना काम किया था और करते हैं, अर्थात् जैसे विक्रम संवत् १६३३ फाल्गुण मास, कृष्णपक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हमने लिखी है, इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्यन्त करते और जानते चले आये हैं। जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं, वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते–घटाते चले जाते हैं। इसी प्रकार आर्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं। और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एक सा वर्त्तमान हो रहा है। और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है, किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है। इसीलिये इसको अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य नहीं हो सकता।...

न्यास परिसर में महर्षि जन्मदिवस मनाया गया।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार, स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : १० अंक : ३

दयानन्दाब्द : -१९९

विक्रमसंवत् : माह-फाल्गुन २०८०

कलि संवत् ५१२४

सृष्टि संवत् :१,९६,०८,५३,१२४

सम्पादक मण्डल :

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

कार्यवाहक सम्पादक :

कमल किशोर आर्य

Email: sampadakmdsprakash@gmail.com

9460649055

प्रकाशक : 0291-2516655

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

Web.-www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये

(१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

क्या	कहाँ
१. वेद-वचन	४
२. तुझसे बड़ा कोई नहीं...	६
३. धर्म सुधा सार....	७
४. महर्षि जीवन...	१६
५. वैदिक सम्पत्ति.......	२१
६. समाचार.............	३३

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

वेद-वचन

एक परमात्मा की पूजा

य एक इद्धव्यश्चर्षनीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।

यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान् सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ।। –ऋग्वेद ६।२२।१

पदार्थः– हे मनुष्यो ! **(यः)** जो **(चर्षणीनाम्)** मनुष्यों के मध्य में **(एकः)** अकेला **(इत्)** ही **(हव्यः)** स्तुति करने और ग्रहण करने योग्य है **(तम्)** उस **(इन्द्रम्)** ऐश्वर्य को देनेवाले का **(आभिः)** इन **(गीर्भिः)** वाणियों से मैं **(अभि, अर्चे)** सब प्रकार से सत्कार करता हूँ **(यः)** जो **(वृषभः)** श्रेष्ठ **(वृष्ण्यावान्)** बल आदि बहुत प्रिय गुणों से युक्त **(सत्यः)** तीनों कालों में अबाध्य **(सत्वा)** सर्वत्र स्थित **(पुरुमायः)** बहुतों को रचनेवाला **(सहस्वान्)** अत्यन्त बल से युक्त हुआ **(पत्यते)** स्वामी के सदृश आचरण करता है उसका सत्कार करता हूँ, उस परमेश्वर का आप लोग भी सत्कार करिए।

भावार्थः–हे मनुष्यो ! जो अद्वितीय, सबसे उत्तम, सच्चिदानन्दस्वरूप, न्यायकारी और सबका स्वामी है, उसका त्याग करके अन्य की उपासना कभी न करो ।

परमात्मा की ही पूजा

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।

गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।। –यजुर्वेद ३५।४।।

पदार्थः– हे जीवो ! जिस जगदीश्वर ने **(अश्वत्थे)** कल ठहरेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में **(वः)** तुम लोगों की **(निषदनम्)** स्थिति की **(पर्णे)** पत्ते के तुल्य चञ्चल जीवन में **(वः)** तुम्हारा **(वसतिः)** निवास **(कृता)** किया, **(यत्)** जिस **(पूरुषम्)** सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को **(किल)** ही **(सनवथ)** सेवन कर उसके साथ **(गोभाजः)** पृथिवी, वाणी, इन्द्रिय वा किरणों का सेवन करनेवाले **(इत्)** ही तुम लोग प्रयत्न के साथ धर्म में स्थिर **(असथ)** होओ ।

भावार्थः–मनुष्यों को चाहिए कि अनित्य संसार में अनित्य शरीरों और पदार्थों को प्राप्त होके क्षणभंगुर जीवन में धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों ।

अग्नि- विद्या

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ।। -सामवेद १५३३।

पदार्थः-१. **(अग्ने)** अग्ने ! तू **(स्वः)** सुख का **(पतिः)** स्वामी है और **(वार्यस्य)** वरणीय **(दात्रस्य)** दान करने योग्य धन-धान्य का **(ईशिषे)** स्वामी है, अतः मैं **(शर्मणि)** सुख चाहूँ तो (तव) तेरा **(स्तोता)** गुण वर्णनकर्त्ता **(स्याम्)** होऊँ।

२. हे (अग्ने) जगन्नायक, विश्ववन्द्य, सर्वज्ञ, सर्वान्यामी, तेजस्वी, दयालु परमेश! (स्वः पतिः) आनन्द और दिव्य प्रकाश के अधिपति आप (वार्यरस) वरणीय, (दात्ररय) दातव्य ऐश्वर्य के (ईशिषे हि) स्वामी हो। (शर्माणि) आपकी शरण पाने के हेतु, मैं (तव) आपके (स्तोता) गुण-कर्म, स्वभावों का कीर्तन करनेवाला (रयार) होऊँ।

भावार्थः- अग्निय विद्या से मनुष्य उत्तम धन-धान्यादि से जो दानादि में लाये जाएँ उनके स्वामी हो सकते हैं, अतः मनुष्य को अग्नि-विषयक विज्ञान प्राप्त करनेवाला होना चाहिए और वह तब हो सकता है जब वे अग्नि के स्तोता=गुण खोजने में श्रम करनेवाले हों।

दृढ़ संकल्प से कामना-पूर्ति

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ।। -अथ. १९।४।२।।

पदार्थः-**(देवीम्)** दिव्य गुणवाली, **(सुभगाम्)** बड़े ऐश्वर्यवाली **(आकूतिम्)** संकल्प-शक्ति को **(पुरः)** आगे **(दधे)** धरता हूँ, **(चित्तस्य)** चित्त 'ज्ञान' की **(माता)** माता, ''जननी, उत्पन्न करनेवाली, वह'' **(नः)** हमारे लिए **(सुहावा)** सहज में बुलाने योग्य **(अस्तु)** होवे । **(याम्)** जिस **(आशाम्)** आशा ''कामना'' को **(एमि)** मैं प्राप्त करूँ **(सा)** वह ''आशा'' **(मे)** मेरे लिए (केवली) सेवनीय **(अस्तु)** होवे, **(मनसि)** मन में **(प्रविष्टाम्)** प्रवेश की हुई **(एनाम्)** इस ''आशा'' को (विदेयम्) मैं पाऊँ ।

भावार्थः- मनुष्य दृढ़संकल्पी होकर ज्ञान को बढ़ावे, जिससे वह जिस शुभ कर्म की आशा मन में करे, वह पूरी होवे ।

तुझसे बड़ा कोई नहीं

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो, न ज्यायानस्ति वृत्रहन् ।

नकिरेवा यथा त्वम् ।। ऋग्. ४.३०.१

ऋषि: **वामदेव: गोतम:** । देवता **इन्द्र:** । छन्द: **गायत्री** ।

- **(वृत्रहन् इन्द्र)** हे वृत्रहन्ता परमात्मन् ! **(नकि:)** न तो (त्वत्) तुझसे **(उत्तर:)** गुणों में अधिक बड़ा [और] (न) न **(ज्यायान्)** आयु में अधिक बड़ा **(अस्ति)** [कोई] है। **(नकि:)** न ही **(एव)** ऐसा [है] (यथा) जैसा **(त्वम्)** तू [है] ।

- हे इन्द्र ! हे देवाधिदेव ! हे महिमामय ! हे परमैश्वर्यशालिन् ! तुम्हारी गरिमा का गान मैं क्या करूँ ? कहाँ सबसे बड़े तुम, और कहाँ सबसे छोटा मैं ! मेरी वाणी तुम्हारे सम्मुख निश्चेष्ट हो जाती है, तुम्हारे गौरव-गीत गाने में अपने को असमर्थ पाती है, और 'नेति-नेति' कहकर ही विरत हो जाती है। फिर भी तुम्हारे लिए दो शब्द तो मैं कहना ही चाहूँगा । हे परम महनीय ! तुमसे 'उत्तर', गुणों में तुमसे अधिक बड़ा, उत्कर्ष में तुमसे अधिक ऊँचा, संसार में कोई नहीं है । न्याय, दया, स्नेह, क्षमाशीलता, वीरता, सत्य, शिवत्व, सौन्दर्य, विवेक, कर्तव्यनिष्ठा, धीरता, पवित्रता, नम्रता, ज्योतिष्मत्ता, परिपक्वता, पूर्णता आदि गुण-गणों की चरम पराकाष्ठा तुम्हारे अन्दर विद्यमान है । गुणों में तुम हिमालय के सर्वोच्च शिखर से भी अधिक ऊँचे हो, भू:भुव:-स्व:-मह:-जन:-तप:- सत्यम् इन उपरि-उपरि विद्यमान लोकों की परम्परा में तुम सत्य-लोक से भी अधिक ऊँचे हो ।

- हे सर्वशक्तिमन् ! हे गुरुता के आगार परमात्मन् ! जैसे गुणों में तुमसे बड़ा कोई नहीं, ऐसे ही आयु में भी तुमसे बड़ा कोई नहीं है । तुम अज, अविनाशी, नित्य, निरंजन हो, न तुम्हारा कभी जन्म होता है, न मृत्यु होती है । हम लौकिक पुरुषों में कोई अधिक से अधिक भी जीवित रहता है तो सौ, दो सौ, तीन सौ, चार सौ, पाँच सौ वर्ष की आयु पा लेता है । सुषुम्ना में प्राणों का संयम करके स्वेच्छायु-मरण की शक्ति जो ऋषि-मुनि पा लेते हैं, वे भी तुमसे अधिक आयु नहीं पा सकते । तुम सनातन काल से चले आ रहे हो और सदा जीवित रहोगे । अत: तुम आयु में सबसे बड़े हो, सर्वाधिक दीर्घजीवी हो ।

- हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म ! तुमसे बड़ा तो कहना ही क्या, तुम्हारे सदृश भी इस ब्रह्माण्ड में अन्य कोई नहीं है । भले ही कुछ लोग तुम्हारे समकक्ष अन्य मित्र, वरुण, रुद्र, विष्णु आदि की कल्पना करते हैं, पर वस्तुत: वे सब देव तुम्हारे अतिरिक्त न होकर तुम्हारे ही विभिन्न रूप हैं । हे इन्द्र ! तुम्हीं मित्रता के कारण मित्र कहलाते हो, तुम्हीं पापनिवारक होने के कारण वरुण कहलाते हो, तुम्हीं शत्रुरोदक तथा भक्तों के दु:खद्रावक होने के कारण रुद्र कहलाते हो, तुम्हीं सर्वव्यापक होने से विष्णु कहलाते हो । ऐसे महा महिमाशाली, अनुपम, अद्वितीय तुम जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है ।

-वेद मञ्जरी

ओ३म

धर्म सुधा सार

दसवींकथाः –भ्रान्ति निवारण और कुरीति–प्रतिषेध

(श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय)

(मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त स्वनामधन्य विद्वान् श्री पंडित गंगाप्रसादजी उपाध्याय वैदिक दर्शन और आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर है। आपने **'धर्म–सुधार–सार'** नाम से दस कथाएँ संग्रहित करके कला प्रेस प्रयाग से वर्ष १९५४ में प्रकाशित करवायी थी। ये कथाएँ बहुत ही सारगर्भित और जटिल दार्शनिक सिद्धांतों को बहुत ही सुगम और सरस भाषा में हृदयंगम करवाने वाली है। –स0)

आज कथा का दसवाँ दिन था। इतने दिनों से कथा सुनते सुनते ओर धार्मिक बातों पर वार्तालाप करते करते लोगों की उत्सुकता बढ़ रही थी। हर एक मनुष्य चाहता था कि में शंका करूँ और स्वामी जी उसका उत्तर दें। स्वामी जी इस प्रकार लोगों को समभाते थे कि उन पर लोगों की श्रद्धा बढ़ती जाती थी।

भजन

वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।
हर जगह ओ३म् का झंडा फिर फहरा दिया ऋषि दयानन्द ने।।
अज्ञान अविद्या की चहुँदिश; घनघोर घटायें छाई थीं।
कर नष्ट उन्हें जग में प्रकाश, फैला दिया ऋषि दयानन्द ने।।
सर पर तूफान बला का था; आँखों से दूर किनारा था।
बन कर मल्लाह किनारे पर, पहुँचा दिया ऋषि दयानन्द ने।।
घुस गये लुटेरे घर में थे, खब माल लूट कर ले जाते।
सोतों का हाथ पकड़ कर फिर, बिठला दिया ऋषि दयानन्द ने।।
मक्कारी ढोंग प्रपंचों से, जो माल मुफ्त का खाते थे।
सब पोल खोल कर दिल उनका, दहला दिया ऋषि दयानन्द ने।।
कब्रों पर सर को पटकते थे, काशी काबे में भटकते थे।
दे ज्ञान उन्हें मुक्ति का मार्ग, दिखला दिया ऋषि दयानन्द ने।।
जो चीख चीख कर आठ पहर, करते थे निन्दा वेदों की।
सर उनका वेदों के आगे,झुकवा दिया ऋषि दयानन्द ने ।।
सब छोड़ चुके थे धर्म कर्म, गौरव गुमान ऋषि मुनियों का।
फिर सन्ध्या हवन यज्ञ करना, सिखला दिया ऋषि दयानन्द ने।।
विद्यालय गुरुकुल खुलवाये, कायम हर जगह समाज किये।
आदर्श पुरातन शिक्षा का, बतला दिया ऋषि दयानन्द ने।।
बलिदान किया बलिवेदी पर, जीवन प्रकाश हँसते हँसते।
सच्चे नेता बन कर सबको, चेता दिया ऋषि दयानन्द ने।।

श्रोताओं में एक पण्डितजी थे जिनका नाम था अनोखेलाल। वे कुछ कुछ पुराने विचारों के पुरुष थे। जब सब लोग इकट्ठ हो गये तो पं0 अनोखेलाल बोलेः–

स्वामीजी महाराज! आप कहते तो ठीक हैं। परन्तु एक बात है। हम देखते हैं कि जब से आर्य्यसमाज स्थापित हुआ है, लोगों की श्रद्धा जाती रही है। न गंगा जी को मानें, न देवी देवतों को, न पितरों को। यदि ऐसा ही रहा तो लोग अश्रद्धालु और नास्तिक हो जायेंगे और पुराने रीति–रिवाज समाप्त हो जायेंगे।

स्वामीजी–पण्डित अनोखेलालजी! आपने इतना उपदेश सुना। उसका आप पर यही प्रभाव पड़ा। आप जानते हैं कि श्रद्धा किसको कहते हैं?

कल्याणचन्द्र– हाँ! महाराज। आज यह समझाइये कि श्रद्धा किसको कहते हैं।

स्वामी जी–देखो भाई! **श्रद्धा (श्रत्+धा) का अर्थ है सत्य पर विश्वास करना।झूठी बातों पर विश्वास करने को श्रद्धा नहीं कहते। इसका नाम हैं अन्धविश्वास।** गंगा स्नान मात्र से मुक्ति नहीं हो सकती। मूर्ति पूजन से ईश्वर नहीं मिलता। मरे पितरों को कोई भोजन नहीं पहुँचा सकता। जो इन झूठी बातों पर विश्वास करता है। **वह श्रद्धालु नहीं है, अपितु अन्धविश्वासी है।** अन्धा मनुष्य साँप को रस्सी समझकर पकड़ले तो साँप उसको अवश्य काट लेगा। इसलिये केवल सच्ची बातों पर श्रद्धा करनी चाहिये। झूठी बातों पर नहीं।

रामचन्द्र–स्वामी जी यह तो आपने नई बात कही। श्रद्धा करना भी कहीं बुरा हो सकता है।

स्वामी जी–हाँ भाई! झूठी बातों पर श्रद्धा करना बुरा है। वेद में लिखा हैः–

...अश्रद्धामनृते दधात्श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।...(यजुर्वेद् अध्याय १६ मन्त्र ७७)

परमात्मा का उपदेश है कि "झूठ" में अश्रद्धा करो और सत्य में श्रद्धा। जो मनुप्य सत्य में अश्रद्धा करता है और असत्य में श्रद्धा, वह अपने आप तो डूबता ही है संसार को भी डुबो मारता है। आजकल के ढोंगी आदमी लोगों को "श्रद्धा" "श्रद्धा" कहकर ठगते फिरते हैं, इनसे बचना चाहिये। तुम देखते नहीं कि हमारे घरों में स्त्री पुरुष कैसी कैसी कुरीतियों में फॅसे हुये हैं और इस से जाति का सत्यानाश हो रहा है।

शिवदत्त–'कुरीति' किसे कहते हैं ?

स्वामीजी–देखो भाई! जो आदमी अज्ञान से कोई खोटा कर्म करता है, उसको **मूर्खता कहते हैं।** परन्तु यदि कोई जाति या बहुत से लोग अज्ञानवश कुछ का कुछ करने का रिवाज डाल लेते हैं **तो उसको कुरीति कहते हैं।** जैसे बच्चों के विवाह का रिवाज कुरीति है। दिवाली पर 'जुआ' खेलना इस डर से कि जो दिवाली पर 'जुआ' नहीं खेलता उसका अगला जन्म छछूंदर का होगा यह कुरीति है। सूरज या चांद ग्रहण के समय खाना खाने से डरना यह कुरीति है। ऐसी सैकड़ों कुरीतियॉ संसार में फैली हुई हैं।

रामचन्द्र–और कौन कौन सी कुरीतियाँ हैं और यह कैसे पैदा होती हैं!

स्वामी जी–कुरीतियों का कारण भ्रान्ति या अज्ञान है। अज्ञानी लोग वैद्यकशास्त्र वा पदार्थ विद्या के पढ़ने, सुनने और विचार रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्माद

आदि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औपध सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखंडी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, लोगों पर विश्वास कर के अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र–यन्त्र बांधते बंधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुःख देते फिरते हैं। जब ऑख के अंधे और गॉठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि "महाराज! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष के न जाने क्या हो गया है?" तब वे बोलते हैं कि "इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है; जब तक तुम इसका उपाय न करोगे तब तक ये न छूटंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो तो हम मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें।" तब वे अन्धे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि "महाराज! चाहे हमारा सर्वस ले जाओ परन्तु इनको अच्छा कर दीजिये।" तब तो उनकी बन पड़ती है।

वे धूर्त कहते हैं "अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेट और ग्रहदान कराओ।" झांझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पाखंडी उन्मत्त होके नाच कूद के कहता है "मैं इसका प्राण ही ले लूंगा।" तब वे अन्धे उसके पगों में पड़ के कहते हैं "आप चाहे सो लीजिये इसको बचाइये।" तब वह धूर्त बोलता है "मैं हनुमान हूँ, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट।" "मैं देवी वा भैरव हूँ, लाओ पॉच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पॉच बकरे, मिठाई और वस्त्र" जब वे कहते हैं कि "जो चाहो सो लो" तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान उनकी भेट पॉच जूता, दंडा व चपेटा लात मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है।

और जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, **ज्योतिर्विदाभास** के पास जाके वे कहते हैं 'हे महाराज! इसके क्या है?' तब वे कहते हैं कि "इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्तिपाठ पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं।"

लोगों को सोचना चाहिये कि जैसी यह पृथ्वी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं, वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते।**क्या वे चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शांत होके सुख दे सके!**

(प्रश्न) क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी–दुखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है।

(उत्तर)नहीं; ये सब पाप पुण्यों के फल हैं।

(प्रश्न) तो क्या ज्योतिशशास्त्र झूठा है?

(उत्तर) नहीं, जो उसमें अंक बीज, रेखागणित विद्याहैं वह सब **सच्ची**, जो फल की लीला है वह सब **झूठी** है।

(प्रश्न) क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है।

(उत्तर) हाँ वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र'रखना चाहिये, क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब

तक जन्मपत्र बन के ग्रहों का फल न सुनें। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता पिता, पुरोहित से कहते हैं "महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये।" जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निधन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बना के सुनाने के आता है। तब उसका मॉ बाप ज्योतिषीजी के सामने बैठ के कहते हैं "इसका ज़न्मपत्र अच्छा तो है?" ज्योतिषी कहता है "जो है सुना देता हूँ। जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्र–ग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान होता है। जिस सभा में जा बैठेगा तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा।" इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं "वाह वाह ज्योतिषीजी आप बहुत अच्छे हो।" ज्योतिषीजी समझते हैं। इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि "यह ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने–फलाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग हैं।" इसके सुनके माता पितादि पुत्र के जन्मके आनन्द को छोड़ के, शोकसागर में डूबकर ज्योतिषीजी से कहते हैं कि "महाराजजी ! अब हम क्या करे? तब ज्योतिषीजी कहते है "उपाय करें।"" गृहस्थ पूछे "क्या उपाय करें?" ज्योतिषीजी प्रस्ताव करने लगते हैं कि ऐसा–ऐसा दान करो। ग्रह के मंत्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे। अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायगा तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुत सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते हैं कि देखो, हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है। तुम्हारे लड़के को बचा दिया।

यहाँ यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठ से कुछ न हो तो दूना तिगुने रुपये उन धूर्तो से लेने चाहियें। और बच जाय तो भी ले लेने चाहियें क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि "इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं है" वैसे गृहस्थ भी कहें कि "यह अपने कर्म और परमेश्वर के नाम से बचा है तुन्हारे करने से नहीं"और तीसरे गुरूआदि भी पुण्यदान कराके आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

अब रह गई शीतला मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं। वे कहते हैं कि "जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मंत्र यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं हाने देते।" इनकी वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु,परमेश्वर के नियम और कर्म फल से भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर ज़ाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकागे? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त जान लेते हैं कि यहाँ हमारी दाल नहीं गलेगी! इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान लोगों का प्रत्युपकार करना चाहिये। और जितनी लीला रसायनमारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको महापामर समझना चाहिये।

गुरुदत्त– स्वामी जी, तीर्थ यात्रा के विषय में आपकी क्या सम्मति है ?

स्वामी जी–आप तीर्थ का ठीक अर्थ नहीं जानते। तीर्थ का अर्थ है वह शुभ काम जिनके करने से मनुष्य भवसागर से तर जाय। विद्या पढ़ना तीर्थ है, ईश्वर की उपासना तीर्थ है। दान देना तीर्थ है। परोपकार करनातीर्थ है। जल स्थल सच्चे तीर्थ नहीं। यह तराने वाले नहीं किन्तु डुबो कर मारने वाले हैं। देखो प्रयाग के कुम्भ में ३ फरवरी १६४४ ई० को हज़ारों स्त्री पुरुष भेड़िया धसान में आकर मर गये। यह उनकी अविद्या थी कि पंडों के बहकाने में आकर ढोंगी साधुओं के दर्शन को चल पड़े। यदि तीर्थ का ठीक अर्थ समझते तो इस प्रकार कुत्ते की मौत नहीं मरते। आजकल बहुत से ढोंगी गुरु मूर्खो को चेला बनाते और झूठ मूठ मंत्र कान में फूँका करते हैं। इससे बचना चाहिये :–

लोभी गुरु लालची चेला दोनों खेलें दाव। भवसागर में डूबते बेठ पथर की नाव।।

रामपदार्थ–और किसी भ्रान्ति के विषय में समझाइये–––

स्वामी जी–देखो! ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है **"आष्णेनरजसा०"** ।१। सूर्य का मन्त्र। **"इमं देवा असपत्नं सुवध्वम्"** ।२।चन्द्र।**"अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः०"** ।३। मंगल।**"उद्बुध्यस्वाग्ने ०"** ।४। बुध।**"बृहस्पते अतियदयों ०"** ।५। बृहस्पति। **"शुक्रमन्धसः"** ।६। शुक्र।**शन्नोदेवीरभिष्टय०"** । ७। शनि। **"कया नश्चित्र आभुवः"** ।८। राहु। और **"केतु" कृण्वन्नकेतवे०"** ।६। इसको केतु की कण्डिका कहते हैं।।(**आप्णेन०**) यह सूर्य और भूमि का आकर्षण।१। दूसरा राजगुण विधायक।२। तीसरा अग्नि।३। और चौथा यजमान।४। पाँचवॉ विद्वान्।५। छठा वीर्य अन्न।६। सातवॉ जल, प्राण और परमेश्वर।७। आठवॉ मित्र।८। नववॉ ज्ञानग्रहण का विधायक मन्त्र है।६। ग्रहों के वाचक नहीं। अर्थ न जानने से भ्रमजाल में पड़े है।

(प्रश्न) ग्रहों का फल होता है वा नहीं?

(उत्तर) जैसा पोपलीला का है वेसा नहीं किन्तु जैसा सूर्य चन्द्रमा की किरण द्वारा उष्णता शीतता अथवा ऋतुवत्कालचक्र का सम्बन्धमात्र से अपनी प्रति के अनुकूल प्रतिकूल सुख दुःख के निमित्त होते हैं। परन्तु जो पोपलीला वाले कहते हैं, "सुनो महाराज सेठजी! यजमानो! तुम्हारे आज आठवॉ चन्द्र सूर्यादि क्रूर घर में आये हैं। अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है। तुमको बड़ा विघ्त होगा। घर द्वार छुड़ाकर परदेश में घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे।" इनसे कहना चाहिये कि सुनो पुरोहितजी! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु है ?

पोप जी– **देवाधीनंजगत्सर्व मन्त्राधीनाश्च देवताः।**
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद ब्राह्मणदैवतम।।

देखो कैसा प्रमाण है। देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं। इसलिये ब्राह्मण देवता कहाते हैं। क्योंकि चाहें जिस देवता को मन्त्र के बल से बुला प्रसन्न कर काम सिद्ध कराने का हमारा ही अधिकार है। जो हम में मन्त्र शक्ति न होती तो तुम्हारे से नास्तिक हमको संसार में रहने ही न देते।

(सत्यवादी) जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे?

देवता ही उनसे दुष्ट काम कराते होंगे?जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं उनसे तुम चाहो से करा सकते हो तो उन मन्त्रों से देवताओं को वश कर राजाओं के कोष उठवाकर अपने घर में भरकर बैठ के आनन्द क्यों नहीं भोगते ? घर–घर में शनैश्चरादि के तेल आदि छायादान लेने को मारे–मारे क्यों फिरते हो? और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके चाहो जितना धन लिया करो। विचारे गरीबों को क्यों लूटते हो? तुमको दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो हमको सर्य्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको ८ वां सेर्य चन्द्र ओर दूसरे को तीसरा हो; दोनों को ज्येष्ठ महीने में बिना जूते पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने ओर जिस पर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिये तथा पौष मास में देनों को नंगे कर पौणमासी की रात्रि भरे मैदान में रक्खें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं तोजानों कि ग्रह कूर और सौम्य ष्टि वाले होते हैं। और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं? और तुम्हारी डाक व तार उनके पास आता जाता है? अथवा तुम उनके का वे तुम्हारे पास आते जाते हैं?जो तुम में मन्त्रशक्ति हो तो स्वयं राजा व धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ? वा शत्रुओं को अपने वश में क्यों नहीं कर लेते हो? नास्तिक वह होता है जो वेद इश्वर की (आज्ञा न माने,) वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे। जब तुमको ग्रहदान न देवे जिस पर ग्रह है वही ग्रहदान को भोगे ते क्या चिन्ता है? जो तुम कहो किनहीं हम ही को देने से वे प्रसन्न होते हैं अन्य को देने से नहीं, ते क्या तुमने ग्रहों का ठेका ले लिया है? जो ठेका लिया है तो सूर्य्यादि को अपने घर में बुला के जल मरो। सच तो यह है कि सूर्य्यादि लोक जड़ हैं। वे नकिसी को दुःख ओर न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं। किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहों की मूर्तियाँ हो, क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ भी तुम में ही घटित होता है। "ये **गृह्णन्ति ते ग्रहाः"** जो ग्रहण करते हैं उनका नाम ग्रह है। जब तक तुम्हारे चरण राजारईस सेठ साहूकार ओर दरिद्रों के पास नहीं पहँचते तब तक किसी को नवग्रह का स्मरण भी नहीं होता! जब तुम साक्षात्सूर्य शनैश्चरादि मूर्त्तिमान्क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब बिना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते फिरते हो।

(पोपजी)दखो! ज्योतिष का प्रत्यक्ष फल। आकाशमें रहने वाले सूर्य, चन्द्र ओर राहु केतु का संयोग रूप ग्रहण को पहले ही कह दते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होताहै वैसा ग्रहों का भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है, देखो धनाढ्य दरिद्र, राजा, रंक, सुखी दुखी ग्रहों ही से होते हैं।

(सत्यवादी) जो यह ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है सा गणित विद्या का है, फलित का नहीं। जो गणितविद्या है वह सच्ची और फलितविद्या स्वाभाविक सम्बन्धजन्य को छोड़ के झूटी है। जैसे अनुलोम, प्रतिलोम घूमनेवाले पृथिवी और चन्द्र के गणित से स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय, अमुक देश, अमुक अवयव में सूर्य वा चन्द्र ग्रहण होगा, जैसे–**छादयत्यर्कमिन्दुविधुं भूमिभाः।।**यह सिद्धान्तशिरोमणि का वचन है और इसी प्रकारसूर्यसिद्धान्तादि में भी है अर्थात् जब सूर्य और भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता है तब सूर्य ग्रहण और जब सूर्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब चन्द्र ग्रहण होता है।अर्थात् चन्द्रमा की छाया भूमि पर और भूमि की छाया

चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाशरूप होने से उसके सन्मुख छाया किसी की नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य वा दीप से देहादि की छाया उल्टी जाती है वैसे ही ग्रहण में समझो। जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रंक होते हैं वे अपने कर्मों से होते हैं ग्रहों से नहीं।बहुत ज्योतिषी लोग अपने लड़का लड़की का विवाह ग्रहों की गणित विद्या के अनुसार करते हैं। पुनः उनमें विरोध व विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता है तो ऐसा क्यों होता? इसलिये कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग में कारण नहीं। भला ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर हैं इनका सम्बन्ध कर्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। कर्म्म और कर्म्म के फल कर्ता भोक्ता जीव और कर्मों के फल भोगानेहारा परमात्मा है। जो तुम ग्रहों का फल मानों तो इसका उत्तर देओ कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है जिसको तुम ध्रुवा त्रुटि मानकर जन्मपत्र बनाते हो उसी समय में भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं?जो कहो नहीं तो झूट और जो कहो होता हैं तो एक चक्रवती के सदृश भूगोल में दूसरा चक्रवती राजा क्यों नहीं होता? हाँ, इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरने की है तो कोई मान भी लेवे।

रामपदार्थ—बच्चों के माता निकल आती है। यह क्या चीज है?

स्वामी जी—रोग को 'माता' कहना मूर्खता है। चेचक 'माता' नहीं रोग है। अतः उचित वेद्य का इलाज कराना चाहिये। समय पर बच्चों को टीका लगवाने से चेचक का ज़ोर कम हो जाता है। इससे डरना नहीं चाहिये। मूर्खों के पास दौड़ने और झाड़ फूँक करने से कुछ नहीं होता! इसी प्रकार और रोग भी हैं जिनका देवी देवता समझकर अज्ञानी लोग धोखा खा जाते हैं। ऐसा करना उचित नहीं।

शिवदत्त—कुछ और कुरीतियाँ बताइये!

स्वामी जी—इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी कुरीतियाँ हैं। यह सब भी अन्धविश्वास से फैलती है। मस्जिदों के नीचे हिन्दू लोग अपने बच्चों को ले जाते हैं। जब नमाज पढ़ कर लोग आते हैं तब इन बच्चों पर फूँकते हैं। भोले हिन्दू समझते हैं कि इससे उनके बच्चे स्वस्थ हो जायँगे। इसी तरह हिन्दू ताजिया की पूजा करते और कब्रों पर चादर चढ़ाते हैं। ऐसा न करना चाहिये।

रामचन्द्र—ताबीज पहनना कैसा है ?

स्वामी जी—ताबीज, कंठी, माला आदि सब झूंठे और लोगों को ठगने के लिये होते हैं। आजकल समाचार पत्रों में, ताबीजों के बड़े बड़े नोटिस छपते हैं—अमुक से परीक्षा में पास हो जाओगे। अमुक से नौकरी लग जायगी। अमुक से विवाह हो जायेगा। इन नोटिसों को पढ़ कर भोले—भाले लोग ठगे जाते हैं। बहुत से विद्यार्थी पढ़ना छोड़ कर ताबीज मंगाते हैं और विश्वास करते हैं कि वे परीक्षा में सफल हो जायेंगे। इसी प्रकार पुत्र—जन्म, नौकरी आदि के लिये हज़ारों व्यक्ति अपने धन का नाश करते हैं।

शिवदत्त—कुपात्र और सुपात्र किसे कहते हैं ?

स्वामी जी—जो छली, कपटी, स्वार्थी विषयी, काम क्रोध मोह लोभ से युक्त, पर हानि

करनेवाले, लंपटी, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसंगी, आलसी जो कोई हो उसके पास बारम्बार मांगना, धरना देना, न किये पश्चात भी हठता से मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उसकी निन्दा करना, शाप और गाली प्रदानादि देना, अनेक बार जे सेवा करे और एक बार न करे तो उसका शत्रु बन जाना, ऊपर से साधु का वेश बना लोगों को बहका कर ठगना और अपने पास पदार्थ है तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सबको फुसला–फुसलू कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात–दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भंगादि मादक द्रव्य खा पीकर बहुतसा पराया पदार्थ खाना, पुना उन्मत्त होकर प्रमादी होना, सत्य मार्ग का विरोध औरझूठ मार्ग में अपने प्रयाजनार्थ चलना, वैसे अपने चेलों को केवल अपनी ही सेवा करने का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा करने को नहीं, सद्वियद्यादि प्रवृत्ति के विराधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा, इश्ट मित्रों में अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं और जगत् भी मिथ्या है, इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रों के लक्षण हैं। और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने पढ़ानेहारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्म की निरन्तर उन्नति करनेहारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुति में हर्श शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा, ईश्वर के गुण कर्म, स्वभावानुकूल वर्त्तमान करनेहारे, न्याय की रीतियुक्त पक्तपातरहित सत्यापदेश और सत्यशास्त्रों के पढ़ने पढ़ानेहारे के परीक्षक, किसी की लल्लो पत्तो न करें, प्रश्नों के यथार्थ समाधानकर्त्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख, दुःख, हानि लाभ समभने वाले, अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृत के समान अपमान और विष के समान मान को समझने वाले सन्तोषी, जे कोई प्रीति से जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक बार आपत्काल में मांगे भी न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा बुरी चेष्टा न करना, वहाँ से झट लौट जाना, उसकी निन्दा न करना, सुखी पुरुषों के साथ मित्रता, दुखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियोंसे 'उपेक्षा'अर्थात् रागद्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्याद्वेषरहित, गंभीराशय सत्पुरुष, धर्मसे युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित, अपनेतन मन धन को परोपकार करने में लगानेवाले, पराये सुख के लिये अपने प्राणोंको भी समर्पितकर्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र हाते है। परन्तु दुर्भिक्षाद आपत्कालमें अन्न, जल, वस्त्र, और औषध पथ्य स्थान के अधिकारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं!

कुरीतियों के विषय में अधिक जानना हो तो स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज के बनाये सत्यार्थप्रकाश का दूसरा, दसवॉ और ग्यारहवॉ समुल्लास पढ़ना चाहिये।

भजन

प्यारे आर्य समाज! तुझ पर जाऊँ बलिहार।।
आर्य जाति के सत्य सुधारक ! वेदधर्म के प्रबल प्रचारक !
अघ अधर्म पाखण्ड संहारक ! दलितों के तारक उद्धारक !
दुखियों के अधार ।तुझ पर जाऊँ बलिहार।।
दीन, अनाथ भूख के मारे, फिरते थे हा!द्वारे द्वारे ।

धर्म कर्म को छोड़ बिचारे, बनते थे औरों के प्यारे ।
उनको लिया उबार । तुझ पर जाऊँ बलिहार।।
जड़ पूजा करनी छुड़वाई । एक ईश की भक्ति सिखाई ।
असत अनीति कुरीति मिटाई। उत्तम वैदिक रीति चलाई ।
कर के धरम प्रचार ।तुझ पर जाऊँ बलिहार।।
जहाँ कहीं भी जाऊंगा मैं । तेरे ही गुण गाऊँगा मैं।
तेरे नियम निभाऊँगा मैं। तुझ पर भेंट चढ़ाऊँगा मैं।
तन, मन, धन, घर—द्वार । तुझ पर जाऊँ बलिहार।।
प्रान्त—प्रान्त में नगर नगर में । डगर डगर में अरु घर घर में।
हो "प्रकाश" तेरा जग भर में । बोले दुनियाँ ऊँचे स्वर में ।
तेरी जय जय कार ।तुझ पर जाऊँ बलिहार।।

—: आरतीः—

ओ३म् जय जगदीश हरे पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करे।।ओं०।।
जो ध्यावे फल पाबे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ।।ओं०।।
मात पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी ।
तुम बिन और न दूज़ा, आश करूँ जिसकी।।ओं०।।
तुम पूर्ण परमात्मन तुम अन्तर्यामी ।
पार ब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी ।।ओं०।।
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्त्ता ।
मै अबोध अज्ञानी पा करो भरता ।।ओं०।।
तुम हो एक अगोचर, सत्र के प्राणपती।
किस विधि मिलूँ दयामय तुमको, मैं कुमती।।आं०।।
दीन वन्धु दुःख हरता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पढ़ा तेरे ।।ओं०।।
विषय विकार मिटाओ, शुद्ध करो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सज्जन की सेवा ।।ओं०।।

महर्षि दयानंद सरस्वती–१५

लेखक: श्री पंडित हरिश्चंद्र जी विद्यालंकार

(गतांक में आपने पढ़ा –मिर्जापुर और छलेसर में वैदिक पाठशाला के आरंभ, महर्षि ने मैक्समूलर के अंग्रेजी वेदभाष्य को कैसे समझा, अद्वैतमतखण्डन पुस्तक की रचना व वितरण, निंदा का अर्थ, ब्रह्मचर्य की शक्ति, रामलीला का खण्डन ! इस अंक में पढ़ें ईसा के मिथ्याचार, दर्शन और गीता के कथनों पर पण्डितों से शास्त्रार्थ, संस्कृत राष्ट्रभाषा, मृत्यू के पश्चात् जीव की गति, भागवत जैसी श्लोकरचना, आदम हव्वा की स्मृति, अदृष्ट की जानकारी, हिन्दुओं की दुर्दशा देख भोजन त्याग आदि रोचक और प्रेरणास्पद घटनाएँ –संपादक)

अध्याय ६–संगठन से पूर्व

(संवत्१६२४ से संवत १६३० तक) कोलकाता में सुधारकों से भेंट

संवत १६२६ के आरंभ में महर्षि ने कोलकाता की ओर जाने का निश्चय किया। आगे चलकर पाठक देखेंगे की इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य वैदिक पाठशाला के लिए मार्ग तैयार करना था।

मुगलसराय में: – बंगाल जाते हुए आप पहले मुगलसराय आए। पहले कुछ दिनों तक कक्निकल रोड के निकट बाबूगंज के श्मशान घाट पर रहकर, फिर बाबू वृंदावन मंडल के बाग में चले गए और बाग की कोठी के चौबारे में रहे।

ईसा महापुरुष:–मुगलसराय में पाठशाला के लिए धनसंग्रह करने के उद्देश्य में महाराज को सफलता नहीं मिली। पादरी लालबिहारी से धर्म विषय पर वार्तालाप हुआ। महर्षि ने बताया कि ईसा महापुरुष अवश्य थे। परंतु यह बात मिथ्या है कि सब के पाप अपने ऊपर लेकर चले गए। फिर, ऐसा मानना पापों की वृद्धि का कारण होगा। दूसरे प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने कहा कि हमें रुचि हो तो vki ls Hkh uhp मनुष्य के हाथ का भोजन खा सकते हैं। वृंदावन बाबू के अनुरोध पर एक दिन वे उनके घर भी गए थे।

डुमरांव में वार्तालाप: – 10 दिन पश्चात् स्वामी जी आगे बढ़े। डुमरांव के उदासी साधु नागाजी की स्वामीजी से पहले भेंट काशी शास्त्रार्थ के पश्चात काशी में ही हुई थी। साधु नागाजी ने महाराज से वचन ले लिया था कि वे कोलकाता जाते डुमरांव अवश्य पधारें।

इस वचन के अनुसार वे डुमरांव पहुँचे। पंडित जवाहरलाल जी भी काशी से आकर स्वामी जी के साथी बने। डुमरांव गॉव के महाराजा महेश्वर बख्शसिंह के नायब दीवान बाबू जयप्रकाश लाल थे। उनके सुझाव पर महाराज ने स्वामी जी को बुलवाकर रेलवे स्टेशन के समीप वाली राज्य की कोठी में ठहराया।

अभिमानी दुर्गादत्त:– डुमरांव के उच्च कोटि के विद्वान पंडित दुर्गादत्त, पंडित जयगोविंद और पंडित बंशीधर आचार्य ने महर्षि से वार्तालाप किया। पंडित दुर्गादत्त अभिमानी शैव थे।

महर्षि ने इन्हें इस बातचीत में बताया–
१. **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** का अर्थ यह है कि जैसे किसी के घर में अन्य कोई ना हो तो वह कह सकता है कि यहाँ एक मैं ही हूँ। परंतु इससे गाँव वालों और संबंधियों आदि का निषेध तो नहीं होता।
२. '**धिग् भस्मरहितम् भालम्**' इत्यादि जाबालोपनिषद को प्रमाण नहीं मानते।
३. गीता के श्लोक **'सर्वधर्मान् परित्यज्य..'** पर भी विचार विनिमय हुआ।
४. पं० दुर्गादत्तजी वेद में मूर्ति पूजा विधेयक प्रकरण में 'प्रतिमा' शब्द नहीं दिखा सके। अभिमानी दुर्गादत्त अनुत्तर होकर कटुता पर उतर आए। तब मुंशी रणधीर प्रसाद पंडितों को समझा कर उठा ले गए। पंडित दुर्गादत्त के अभिमान की दिग्दर्शक उनकी वह अपनी दिग्विजय पुस्तक है, जो उसकी आत्मा प्रशंसा से भरी पड़ी है।
आरा में: – डुमरांव से महर्षि आरा पहुँचे और महाराज डुमरांव के बाग में ठहरे। यहाँ उनके आतिथ्य का भार मुंशी हरबंसलाल वकील और बाबू रजनीकांत मुखोपाध्याय ने लिया। पंडित रूद्रदत्त और पंडित चंद्रदत्त पौराणिक से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। स्वामीजी ने मूर्तिपूजा के समर्थन में पुराणों के प्रमाण स्वीकार नहीं किये।
पुराण किसने बनाया?: – महर्षि ने यहाँ पंडितों को बताया कि महाभारत के पश्चात् अनाचार फैलने और ब्राह्मणों के भी असहाय हो जाने पर धूर्त लोगों ने स्वार्थ सिद्धि के लिए पुराणों की रचना की होगी। तंत्र ग्रन्थों की कड़ी आलोचना से पंडित रूद्रदत्त चिढ़ गए और उठकर चले गए।

यहाँ आपके दो व्याख्यान वैदिक धर्म पर हुए। एक गवर्नमेंट स्कूल के आंगन में, दूसरा अन्यत्र। इस समय मूर्तिपूजा बालविवाह मंत्र फूंक कर दीक्षा ग्रहण आदि कुरीतियों का खंडन किया। व्याख्यान संस्कृत में था, बाबू रजनीकांत उसका साथ–साथ अनुवाद करते जाते थे।
सभा की स्थापना: – यहाँ अपने एक सभा की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य आर्यधर्म और रीति–नीति का संस्कार करना था। परंतु एक दो अधिवेशन के पश्चात यह सभा समाप्त हो गई।
संस्कृत राष्ट्रभाषा: – यहाँ महर्षि ने इस बात का स्पष्टीकरण किया कि वे संस्कृत में क्यों बोलते थे। श्री एच.डब्ल्यू.अलेक्जेण्डर मजिस्ट्रेट से महर्षि ने मुंशी हरवंशलाल की प्रेरणा पर ही भेंट की थी। इस भेंट में मजिस्ट्रेट ने उक्त प्रश्न किया! महर्षि ने उत्तर दिया–भारतवर्ष में द्रविड़ प्रभृत्ति अनेक भाषाएँ बोली जाती है। तब मैं किस भाषा में बोलूँ? इसके अतिरिक्त संस्कृत सारे हिंदुओं की भाषा है। अतः संस्कृत बोलना ही उचित है। आज स्वराज मिलने पर देश के अधिकांश विचारकों का यही मत है कि भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत ही हो सकती है। इसका जो कारण महर्षि ने ऊपर व्यक्त किया था, उसकी सत्यता आज अनुभव की जा रही है।

इस बातचीत में महर्षि ने हिंदुओं की रीति नीति और सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश

डाला। वर्ण–व्यवस्था को कर्म और चरित्र पर निर्भर बताया। आपने बताया कि रसोई का काम करना (पाक क्रिया) ब्राह्मणों का काम नहीं था। यह तो शूद्रों का कार्य है। पुराण बनाने वालों ने इस प्रथा को उठाकर अनिष्ट कर दिया। आरा में १५ दिन ठहरकर महर्षि कोलकाता की ओर अग्रसर हुए।

पटना में एक मासः – भाद्र शुक्ला ३–४ संवत ९२६ को महर्षि पटना पहुँचे और महाराज भूपसिंह के रोशनबाग में ठहरे।

मृत्यु के पश्चात जीवन की गतिः – महर्षि के आगमन के समाचार से नगर में स्फूर्ति आ गई। उच्च राज्य कर्मचारी, पंडित, प्रतिष्ठित और भक्तजन उनके सत्संग से लाभ उठाने लगे। वहाँ के प्रसिद्ध पंडित रामजीवन भट्ट ५०–६० ब्राह्मणों को ले शास्त्रार्थ के लिए पहुँचे। शास्त्रार्थ आरंभ भी हुआ। पर पंडितों में स्वयं एकमत्य नहीं हुआ। लोग उठकर चले गए।

यहाँ एक प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने बताया– "मृत्यु के पश्चात् जीव वायु के सहारे आकाश में, फिर वायु, पुष्प, अन्न और जल के आश्रय होकर मनुष्य के हृदय और वीर्य में पहुँचता है और स्त्री में गर्भ स्थापना करता है। वही फिर जन्मता है। उसको बंध और मोक्ष होता है।

यहाँ नॉर्मल स्कूल का एक विद्यार्थी राजनाथ तिवारी महर्षि की प्रशंसा सुनकर उनके साथ रहने का इच्छुक हुआ। महर्षि का पहला विद्यार्थी चोर था अतएव उससे अप्रसन्न भी थे। आपने पहले तो पिता की आज्ञा के बिना उसके साथ रखने को सहमत ना हुए। फिर बहुत अनुनय विनय देखकर सहमत हो गए। यह विद्यार्थी सायंकाल अपने सहपाठियों में आया। सबने इसके भाग्य की प्रशंसा की। परंतु जब रात को लौटने का समय हुआ, तो नगर से दो ढाई कोस दूर महर्षि के स्थान पर रात को जाने से वह डरने लगा। तब सब ने साहस बांधकर उसे भेजा। रात अंधेरी थी। बूंदे पड़ रही थी रास्ते में सांपों को लांघकर किसी प्रकार वह स्वामी जी के स्थान पर पहुँचा।'तुमने रास्ते में सर्प देखा था'– पहुँचते ही महर्षि के मुख से यह प्रश्न सुनकर राजनाथ को आश्चर्य हुआ।

भागवत जैसी श्लोक रचना– एक दिन एक ब्राह्मण ने भागवत के खण्डन के समय उपालंभ दिया। खण्डन तो करते हैं, आप ऐसे १८000 श्लोक बना कर दिखाएँ तो जानें। महर्षि ने कहा १८000 नहीं ३८000 बना दूँ, लिखते जाओ! और जूता खड़ाऊं के प्रश्नोत्तर में श्लोक लिखाने लगे। दो श्लोक लिखकर ही उसे महर्षि के व्याकरण और भाषा के सौष्ठव का ज्ञान हो गया। इसके पश्चात वह महाराज को प्रणाम करके चुपचाप चला गया। महर्षि पटना में एक मास रहे। चलने से १५ दिन पहले उन्होंने एक विज्ञापन द्वारा अपने जाने की और शास्त्रार्थ का अवसर देने की घोषणा की, परंतु शास्त्रार्थ के लिए और कोई सामने नहीं आया।

आदम हव्वा की स्मृतिः –३ अक्टूबर को मुंगेर के लिए बेगमपुरा के स्टेशन पर जाने के लिए तैयार हुए। रात्रि के बारह बजे गाड़ी जमालपुर स्टेशन पहुँची। मुंगेर की गाड़ी में अभी देरी थी। महर्षि उसी प्रकार विवसत्र दशा में प्लेटफार्म पर टहलने लगे। एक अंग्रेज

इंजीनियर अपनी पत्नी समेत वहाँ पहुँचे। अंग्रेज पत्नी को नंगे साधु की वहाँ उपस्थित खटकी। स्टेशन मास्टर को आदेश हुआ कि वह नंगे साधु को आँखों से पार कर दे। बेचारे अंग्रेज दंपति को क्या मालूम था कि प्रसिद्ध सुधारक स्वामी दयानंद उनके सामने इस प्रकार टहल रहा है।

बेचारा स्टेशन मास्टर भी अजीब उलझन में था। महर्षि से अंग्रेज दंपति का संदेश स्पष्ट न कह कर उनसे कुर्सी पर एक ओर बैठ जाने की प्रार्थना की। महर्षि ने संकेत समझ उत्तर दिया–'उनसे कह दो यह उसी युग का पुरुष है जब बाबा आदम और बीवी हव्वा अदन के उद्यान में नंगे रहने में तनिक भी नहीं शरमाते थे। अंत में महर्षि का पूरा परिचय प्राप्त कर अंग्रेज दंपति ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक सुअवसर से लाभ उठाया। वह गाड़ी आने तक महर्षि से वार्तालाप करते रहे।

आश्विन शुक्ल १ संवत १६२६ को प्रातःकाल महर्षि मुंगेर पहुँचे। इस बार उन्होंने किसी से पूछे बिना अपना निवास स्थान निश्चित करने का मानो निश्चय ही किया हुआ था। यूँही एक तरफ चल पड़े और थोड़ी दूर चलकर किसी साधु के आश्रम में पहुँच गए। वहां दो कमरे, कुँआं, फुलवारी और गंगा की धारा–सब कुछ था। बस यहीं पर ठहरने का निश्चय किया।

भिक्षा मांगने पर भी न दी: – महर्षि इस आश्रम में चार दिन विराजे परंतु दो ब्राह्मणों के सिवाय उनके पास कोई नहीं आया। एक दिन उनका कहार एक टाल पर लकड़ी मांगने चला गया टाल वाले ने टाल दिया। जब वह लौटा तो महर्षि ने राजनाथ से कहा 'इसे जूते लगाओ, यह टाल पर ईंधन की भिक्षा मांगने गया था।' कहार को आश्चर्य हुआ जबकि टाल वहाँ से दिखती भी नहीं है, महर्षि यह बात कैसे जान गए? इतने में ही टाल वाला पाँच बोझ लकड़ी लेकर उपस्थित हो गया। महर्षि ने बहुत अनुनय विनय के पश्चात ईंधन ले लिया, परंतु विद्यार्थी और कहार दोनों को सावधान कर दिया कि कभी किसी से भिक्षा मांगी तो दोनों को निकाल देंगे।

एक दिन एक ब्राह्मण के दृढ आग्रह पर महर्षि ने अपने ब्रह्मचारी को उसके घर भोजन करने के लिए और अपने लिए ले आने का आदेश दिया। वे किसी के घर भोजन करने नहीं जाया करते थे। इसके पश्चात प्रतिदिन ३०–४० व्यक्ति महर्षि के सत्संग का लाभ उठाते रहे। महर्षि पूर्ववत मूर्तिपूजा का खंडन करते रहे, किसी ने कोई आक्षेप नहीं किया। १५ दिन पश्चात कार्तिक कृष्ण २ को यहाँ से प्रस्थित हुए।

भागलपुर में दो मासः – कार्तिक कृष्ण ४ संवत १६२६ विक्रमी को महर्षि भागलपुर पधारे और लगभग दो मास रहकर पौष कृष्णा १ को यहाँ से कोलकाता की ओर आगे बढ़ गए। यहाँ पहले तो गंगा तटवर्ती बुद्धेश्वर महादेव के मंदिर में ठहरने का विचार किया। परंतु स्थान को अनुकूल ना देख कर छपटिया तालाब पर स्थित एक मंदिर में ठहर गए।

थोड़ी देर पीछे इस मंदिर के स्वामी पंडित मोहनलाल शाक्य–द्वीपी से भेंट हुई। पंडित ने महर्षि का यथोचित सत्कार किया। वह संस्कृतज्ञ था। रात को दस बजे तक उनका वार्तालाप चलता रहा।

पुत्र कामना से अन्नदानः – प्रातः काल से दर्शनार्थी आने लगे। धीरे–धीरे सत्संगियों की संख्या भी बढ़ने लगी। मूर्तिपूजा का खंडन चलता रहा, पर किसी ने टोका तक नहीं। भोजन की व्यवस्था एक अग्रवाल सज्जन ने की, परंतु दो दिन पश्चात ही इसका भोजन लेना महर्षि को स्वीकृत नहीं हुआ। कहाए–'हम ईश्वर नहीं है जो तुम्हें पुत्र दें। हमें ऐसा स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिए। उस सज्जन को आश्चर्य हुआ कि महर्षि बिना बताए उसके मन की बात कैसे जान गए?

हाई स्कूल में व्याख्यानः – एक सप्ताह पश्चात महर्षि बाबू पार्वतीचरण के बाग में चले गए। बाबू निवारणचंद्र मुखोपाध्याय के उद्योग से आपका व्याख्यान 'मनुष्य के कर्तव्याकर्तव्य' पर हाई स्कूल के व्याख्यान भवन में हुआ। वर्द्धमान के महाराजा भी, अपने भेजे चार नैयायिक पंडितों के द्वारा महर्षि की प्रशंसा सुन सत्संग में आए। उनके मकान पर ठहरने का निमंत्रण मकान सुविधाजनक ना होने से स्वीकार न कर सके। एक ब्राह्मणोत्पन्न बंगाली इसाई को आपके व्याख्यानों के पश्चात बड़ा पश्चाताप अनुभव हुआ। उसने कहा–यदि आप सा उपदेष्टा पहले मिलता तो मैं इसाई क्यों होता? **ईसाई पादरियों के हिंदू धर्म के संबंध में किए गए प्रश्नों का उत्तर न पाकर ही मैं विधर्मी बना।**

बनैला के राजा निरानंदसिंह के साथ पालकी में सवार होकर महर्षि उसके घर तक गए। वहाँ उसने पुत्रेष्टि के संबंध में महर्षि से परामर्श करना चाहा। महर्षि को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि पहली स्त्री से पुत्र होते हुए भी पुत्रपत्नी दोनों से अनबन के कारण और पुत्र कामना से ही इसने तीसरा विवाह किया है। महर्षि ने बताया, अब इतनी आयु में पुत्रेष्टि से लाभ नही। महाराज पाठशाला के लिए राजा से धन संग्रह की जिस बात की आशा लेकर आए थे, राजा ने इसका संकेत भी ना किया।

हिंदू मुस्लिम द्वेश नैसर्गिक नहींः – पादरी और मौलवी भी शंका समाधान के लिए आते थे। एक दिन एक सुशिक्षित मौलवी इसी सिलसिले में आया। महाराज के कमरे में जल तथा अन्य भोज्य पदार्थ देखकर बाहर ही रुक गया। महर्षि ने उसके संकोच का कारण जान कहा तुम्हारे भीतर आने से हमारे भोज्य पदार्थ अशुद्धि नहीं होंगे। महर्षि ने यहाँ संकेत किया कि हिंदू मुस्लिम विद्वेश कोई प्रातिक घटना नहीं है। इसका कारण हिंदुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार ही है।

मूर्खता पर भीषण अनुताप : भोजन भी नहीं कियाः – यहाँ एक दिन पर्व पड़ा। गंगा पार उस दिन मेला था। सायंकाल महर्षि ने मेले में घूमते हुए देखा – लोग अपनी लड़कियां पंडों को दान कर रहे हैं। हिंदू जाति की इस मूर्खता और पंडों की धूर्तता पर निर्द्वन्द्व महाराज भी अनुताप से तप्त हो उठे। उस दिन उनके लिए भोजन लाने वाले भक्त नंदन

ओ३म्

वैदिक संपत्ति–५

लेखकः पंडित रघुनंदन शर्मा साहित्याचार्य

(महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास के इस मुखपत्र में इस माह से श्री पंडित रघुनंदन शर्मा साहित्याचार्य रचित प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक संपत्ति' का धारावाहिक प्रकाशन माह जून २०२३ में आरंभ किया गया था। गतांक से इसे नियमित किया है। इस अंक में पुस्तक की भूमिका समाप्त होने जा रही है।

भूमिका का यह भाग लिखते हुए आरंभ में यह अनुभव हुआ कि कुछ पाद टिप्पणियों की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए रेखांकन के अतिरिक्त पाद टिप्पणियों के चिह्न भी अंकित किए थे, जिन्हें भूमिका पूरी लिखकर हटा दिया है। ग्रंथ लेखक की विनय पढ़कर सुधी पाठक स्वयं समझ जाएंगे कि मैने पादटिप्पणियों के चिह्न क्यों हटाए। हॉ! पढ़ना बहुत ध्यान से सावधान होकर पड़ेगा – संपादक)

त्यागवाद की सभ्यता

इतना सब कुछ लिखने के बाद चतुर्थ खण्ड में हमने आर्यों की उस त्यागवाद की सभ्यता का उज्ज्वल स्वरूप दिखलाया है जो परमात्मा की ओर से आदि सृष्टि में वेदों के द्वारा आदिमकालीन मनुष्यों को मिली थी। हमारा विश्वास है कि आर्यो ने उस सभ्यता की इमारत को अर्थ, थर्म, काम और मोक्ष की आधारशिलाओं पर स्थिर किया है और उसे वर्णाश्रम की सुदृढ़श्रृङ्खला से कसकर बाँध दिया है। इस सभ्यता के अनुसार व्यवहार करने से लोक परलोक से सम्बन्ध रखनेवाली सनुष्य की जितनी इच्छाएँ हैं सबकी पूर्ति हो जाती है और किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नही होता, प्रत्युत् एक ऐसा सुदृढ़ राजमार्ग बन जाता है कि मनुष्य समाज अपनी इस सभ्यता की रक्षा करते हुए सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करता है तथा अन्य समस्त प्राणी भी अपनी पूर्ण आयु जीने की सुविधा प्राप्त करते हैं।

इसके बाद उपसंहार में हमने बतलाया हैं कि आर्यों के समस्त आर्य साहित्य और आर्यव्यवहार से एक स्वर के साथ यही आवाज निकलती है कि वैदिक आर्यसभ्यता का आदर्श मोक्ष को केन्द्र बनाकर लोक में समस्त प्राणियों के दीर्घजीवन का प्रबन्ध करके सबसे सबको सुख पहुँचाने की ओर जे जाता है और अपनी इस सभ्यता को चिरंजीवी रखने की शक्तिप्रदान करके एक ऐसा राजमार्ग बना देता है कि जिस पर चलने से समस्त प्राणी दीर्घाति दीर्घजीवन–मोक्ष–को सरलता से पहुँच सकते हैं। यही इस ग्रन्थ का सारांश है और यही इस ग्रन्थ मे प्रतिपादित विषयों का क्रम है।

परन्तु अनेक लोग कहते हैं कि जिस महत्वपूर्ण बिचार को लेकर इतना बड़ा ग्रन्थ. लिखा गया हैं और जिस रीति नीति, आचार व्यवहार ओर रहन सहन के अनुसार समस्त मनुष्यसमाज को अपना जीवन बनाने का अभिलाषा प्रकट की गई है उस रीति नीति में भी कई

त्रुटियॉ हैं। **एक** तो इसमें बार बार ईश्वर, धर्म, वेद ओर मोक्ष की बातें कही गई हैं जो बिलकुल ही समय के विपरीत हैं। इन बातों का अब महत्त्व नहीं हैं। इन बातों को योरप के विद्वानों ने अपने मस्तिष्क से निकाल दिया है। इसलिए अब इनकी पुर्नप्रतिष्ठा नहीं हो सकती और न वह सभ्यता ही चल सकती है, जिसमें इस प्रकार की अप्रत्यक्ष बातों को महत्त्व दिया गया हो। **दूसरी** त्रुटि इसमें यह है कि संसार के प्रायः सभी मनुष्य अपने धर्म, अपने रीति रिवाज और अपनी पुरानी सभ्यता के पक्षपाती होते हैं, इसलिए संसार भर की सभी जातियॉ अपनी पुरानी सभ्यता का मोह छोड़कर वेद के नाम से न तो वैदिक ही हो सकता हैं ओर न अपने को आर्य ही कह सकती हैं। **तीसरी** त्रुटि इसमें यह है कि इस व्यवस्था के अनुसार देश में दरिद्रता के फैल जाने का भय है। एक तो देश वैसे ही बहुत गरीब है, दूसरे इस प्रकार के विचारों के प्रचार से और भी अधिक आलस और दरिद्रता के फैल जाने का डर है। **चौथी** त्रुटि यह है कि यह व्यवस्था मनुष्य स्वभाव के भी विरुद्ध हैं। क्योंकि मनुष्य सदैव शोभा श्रृङ्गार, ठाट बाट और बनाव चुनाव को ही पसन्द करता हैं, पर इस व्यवस्था में अस्वाभाविक रहन सहन का वर्णन किया गया है, इसलिए इसका प्रचार सर्वसाधारण में नहीं हो सकता। **पाँचवीं** त्रुटि यह है कि जिस वेद और आर्य साहित्य के अनुसार वैदिक सम्पत्ति का संकलन किया गया है उस वेद और आर्य साहित्य के माननेवाने भारतवासीपण्डित इस निष्पत्ति पर कभी रज्जासन्द न होंगे कि वेद शास्त्रों का जो कुछ अभिप्राय वैदिक सम्पत्ति में निकाला गया है वही सत्य हैं और उसमें भूल नहीं है। ऐसी दशा में–इतनी त्रुटियों के होते हुए––कैसे विश्वास किया जा सकता है कि इस व्यवस्था का समस्त संसार में प्रचार करने से सबको लाभ ही होगा?

शंका समाधान

इन उपर्युक्त शंकाओं में जो त्रुटियों की बात कही गई है निर्मूल है। इस वैदिक ब्यवस्था में एक भी त्रुटि नहीं हैं। ये जो शंकाएँ है जिनका समाधान यद्यपि इस ग्रंथ को आद्योपान्त पढ़ने से आप ही आप हो जायगा तथापि हम यहाँ भी साधारण रीति से इनका समाधान करना आवश्यक समझते हैं। प्रथम शंका में जो लोग कहते हैं कि इसमें ईश्वर, धर्म, वेद और मोक्ष की बात बार बार कही गई है पर इन बातों को समझदार लोग छोड़ रहे हैं, इसलिए इस व्यवस्था का लोगों पर कुछ भी असर नहीं पड़ सकता और दूसरी शंका में जो लोग कहते हैं कि संसार के सभी लोग अपने पुराने घर्म, रीति ओर सभ्यता के पक्षपाती होते हैं अतः सभी लोग अपनी प्राचीनता का मोह छोड़कर वैदिक आर्य नहीं बन सकते, वे दोनों गलती पर हैं और दोनों एक दूसरे का खण्डन करते हैं। यदि संसार के समझदार मनुष्य ईश्वर, धर्म और मोक्ष जैसे प्रभावशाली विषयों को छोड़ रहे हैं तो पुराने धर्म, रीति और सभ्यता का मोह देर तक कैसे रह सकता है ? जो बातें उपयोगी नहीं हैं, चाहे प्राचीन हों अथवा नवीन हों, न तो वे अ्ब देर तक रहही सकती हैं ओर न रहना ही चाहिय। परन्तु वैदिक सम्पत्ति में जिस ईश्वर, धर्म, वेद और मोक्ष का वर्णन किया गया है वह निरुपयोगी नहीं प्रत्युत अत्यन्त उपयोगी है। क्योंकि बिना उसके स्वीकार किये संसार की आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों की जटिल समस्याएँ हल ही नहीं हो सकतीं। विना ईश्वर के माने,बिना ईश्वरप्राप्ति का उपाय

किये और बिना सदाचार का अनुष्ठान किये मनुष्य में समता, दया और प्रेम के भाव जाग्रत ही नहीं हो सकते और न विना इन भावों के संसार की व्यवस्थाहीहो सकती है। इसलिए वैदिक सम्पत्ति में बार बार ईश्वर, धर्म और मोक्ष आदि का वर्णन निरर्थक नहीं है। रही बात सबके वैदिक आर्य हो जाने की, वह कोई आवश्यक बात नहीं है।वैदिक व्यवस्था में यह आवश्यक नहीं है कि कोई किसी सभ्यता का गुलाम हो जाय। वैदिक सभ्यता के अनुसार तो केवल व्यवहार ही करना आवश्यक है, चेला होना नहीं।क्योंकि यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। इसमें तो फलाहार करना, सादे वस्त्र पहनना,सादे मकानों में रहना, थोड़ी सी आवश्यक गृहस्थी रखना, पशु पालना, वाटिका लगाने में ही श्रम करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करके एक दो सन्तान उत्पन्न करना और रात दिन परमात्मा के गुणानुवाद गाते हुए मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्राणी को दुःख न देना तथा सताने वाले आततायी बर्बरों को दण्ड के द्वारा और सभ्य शत्रुओं को अपने आचरण और आत्मिक बल के द्वारा परास्त करके अपनी और अपने समाज की रक्षा करना ही बतलाया गया है।

इसलिए यह किसी भी सम्प्रदाय, जाति, कौम और समाज के प्रतिकूल नहीं है। जितने सभ्य सम्प्रदाय हैं, जितनी सभ्य जातियाँ हैं और जितनी सभ्य समाजें हैं सभी में ये सिद्धान्त स्वीकार किये जा सकते हैं। कौन ऐसा पतित समाज होगा जो उपर्युक्त बातों को ख़राब कहेगा ! इसलिए इस व्यवस्था से किसी की भी सभ्यता के ह्रास या नाश का डर नहीं है।

तीसरी यह शंका कि इस प्रकार की बातों के प्रचार से देश में आलस और दरिद्रता के बढ़ने का भय है तथा चौथी यह शंका कि इस प्रकार की दरिद्रता की रहन सहन मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है, एक ही शंका के दो रूप हैं। जो लोग सीधी सादी रहन सहन के साथ रहना चाहते वही इस व्यवस्था को दरिद्रता की फैलानेवाली भी कहते हैं और बहाना करते हैं कि रहन सहन आस्थ्वाभाविक है। वे नहीं सोचते कि यदि यह रहन सहन अस्वाभाविक होती तो बच्चा नग्न पैदा न होता, प्रत्युल जामा पगड़ी पहने हुए ही उत्पन्न होता साथ में एक मोटर और एक पंखाकुली भी लाता। पर हम देखते हैं कि मनुष्य काबच्चा पैदा होते ही शौक़ीन नहीं बन जाता। वह तो नग्न रहकर मिट्टी में ही खेलना पसंद करता है। वह यदि इस प्रचलित भौतिक आडम्बर को न देखे तो कभी ज़िन्दगी भर इस प्रकार के पदार्थों का नाम हीन ले और न कभी स्वप्न में उनकी ओर आकर्षित ही हो।

जंगलों में करोड़ों आदमी रहते हैं पर वे इन बातों की कल्पना कभी स्वप्न में भी नहीं करते। बड़े बड़े धनवान और बड़े बडे राजा महाराजा भी इन भौतिक पदार्थों से घबराकर इनको लात मारकर और लंगोटी लगाकर जंगलों में भाग जाते हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सादी रहन सदन अस्वाभाविक है। रही दरिद्रता बढ़ाने को बात सो संसार में अधिक जनसंख्या सदैव दरिद्रों अर्थात् साधारण लोगों की ही रही है और रहेगी। इसका कारण यही है कि अमीरता को बढ़ानेवाली भौतिक सामग्री सबके पास पहुँच ही नहीं सकती। क्योंकि संसार में शोभा श्रृंगार, ठाठ बाट, बनाव चुनाव और आमोद प्रमोद के बढ़ाने वाले इमने पदार्थ ही नहीं हैं जो सारी ख़ल्क़त को बाँटे जा सके। हीरा, मोती, सोना चांदी, रेशम,

हाथीदाँत और ऐसे ही अन्य मूल्यवान् पदार्थ संसार में बहुत ही थोड़े हैं। ऐसी दशा में संसार के समस्त मूल्यवान् पदार्थों को अपने ही घर में जमा करने की उन्हीं को सूझती है जो गरीबी अमीरी के दो भयङ्कर विभागों को सदैव बनाये रखना चाहते हें। पर अब वह समय नहीं रहा। अबतो वह समय आ गया है कि जहाँ तक हो सके शीघ्र से शीघ्र ग़रीबी और अमीरी के विभागों को हटा दिया जाय और सादे सीधे रहन सहन के साथ सबको एक समान आर्थिक लाभ पहुँचाने की व्यवस्था की जाय। सादी और समान आर्थिक व्यवस्था से न कोई अमीर कहा जा सकता है न ग़रीब, प्रत्युत सभी अपने को अमीर ही समझ सकते हैं। इसलिए इस व्यवस्था में अस्वाभाविकता का और दरिद्रता के प्रचार का दोष नहीं लग सकता।

अब रही बात पाँचवीं शंका में बतलाये हुए वेद के मानने वालों की। वेद के माननेवाले इस समय अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हैं। तृतीय खंड में सम्प्रदायों का इतिहास लिखते हुए हमने आर्यो से अनायों की उत्पत्ति, आर्यों अनार्यों का विरोध, लड़ाई और त्याग तथा पुनः सम्मिश्रण और आर्यशास्त्रविध्वंस का साद्यन्त वर्णन कर दिया है और बतला दिया है कि मौलिक आर्यों के शास्त्र और सभ्यता में किस प्रकार सम्मिश्रण मोजूद है। इस सम्मिश्रण के ही कारण आर्यों में मद्य, मांस, व्यभिचार, श्रृङ्गार, कला श्रोर श्रृङ्गारिक व्यापार की प्रवृत्ति हुई ओर सब विलासी होकर निर्बल हो गए। फल यह हुआ कि इनकी कारीगरी, व्यापार और दौलत के लालच से प्रेरित होकर विदेशियों ने धावा किया और भारत देश पराधीन हो गया तथा आर्यजाति का हर प्रकार से पतन हुआ। इस इतिहास से स्पष्ट सूचित होता है कि आर्यों के साहित्य सें जो भौतिक उन्नति सस्बन्धी और आनाचार सम्बन्धी विचार मिलते हैं वे दोनों आर्यों की मौलिक सभ्यता के नहीं हैं, प्रत्युत् मिश्रित सभ्यता के हैं।

आर्यो की मौलिक सभ्यता के समय न तो भव्य नगरों, न रेल, तार, मोटर आदियानों और न भौतिक शस्त्रास्त्रों का ही व्यवहार था और न मद्य, मांस, पशुयज्ञ, लिङ्गपूजन आदि आसुरी प्रवृत्तियों का ही प्रचार था। इन दोनों प्रकार के उत्पातों का आर्यों की आदिम वैदिक सभ्यता से कुछ भी वास्ता नहीं है। ये दोनों प्रकार की बातें अनेकों जातियों के मिश्रण का ही फल् हैं। यही कारण है कि आर्यो की एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है जिसमें आसुरी भावों का मिश्रण न हो। जो लोग वेदों ओर अन्य आर्यसाहित्य से रेल, मोटर,बिजली की रोशनी का वर्णन निकालकर योरप की वर्तमान भौतिक उन्नति के साथ मेल मिलाते हैं वे ग़लती करते हैं। क्योंकि यजुर्वेद ४०/६ में स्पष्ट लिखा है कि जो प्रति के कार्य अथवा कारण की उपासना करते हैं वे दोनों सत्यानाश हो जाते हैं। इसी तरह जो लोग वाममार्ग की उलजलूल बातों को अथवा इसी प्रकार की अन्य श्रुतिविपरीत लीलाओं को वैदिक आर्य सभ्यता समझते हैं वे भी गलती पर ही हैं।

आर्य सभ्यता का उज्ज्वल स्वरूप

आर्य सभ्यता का उज्ज्वल स्वरूप तो आश्रमों में ही दिखलाई पड़ता है, जहाँ आर्यों का तीन चतुर्थांश भाग सादे और तपस्वी जीवन के साथ विचरता है और एक चतुर्थांश भाग उसी

तीन चतुर्थांश भाग की सेवा में लगा रहता है। इसी तरह आर्यसभ्यता का आपत्कालिक रूप वर्णो में दिखलाई पड़ता है जो आपत्ति के समय शिक्षा, रक्षा, जीविका और कारीगरी के द्वारा सेवा करके अपने समाज की रक्षा करता है। यही असली आर्यसभ्यता है। इसका यदि उज्ज्वल रूप देखना हो तो वह केवल वेदों की संहिताओं में ही दिखलाई पड़ सकता है, किसी लौकिक साहित्य अथवा लौकिक साहित्य से प्रभावित किसी वेदभाष्य में नहीं। इसलिए सम्प्रदायों का चश्मा उतारकर उस वर्णाश्रम व्यवस्था का जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में ओतप्रोत है निरीक्षण करने ही सेज्ञात हो सकता है कि आर्यो की वास्तविक सभ्यता क्या है। आर्यो की असली सभ्यता के नमूने उपनिषदों में श्रेय और प्रेय का वर्णन करते हुए और गीता में दैवी तथा आसुरी सम्पत्ति का वर्णन करते हुए स्पष्ट कर दिये गये हैं। अतएव हमने उसी श्रेय और दैवी सम्पत्ति से सम्बन्ध रखनेवाली वास्तविक आर्यसभ्यता का स्वरूप इस पुस्तक में दिखाया है। ऐसी दशा में यह न तो आर्यसमाज से विरोध रखती है न सनातनधर्म से, न हिन्दुओं से न मुसलमानों से, न ईसाइयों से, न पारसियों से और न जैनों से न बौद्धों से। यह सभ्यता तो मनुष्यमात्र की है और मनुष्यमात्र को एक समान ही लाभ पहुँचानेवाली है। यही कारण है कि इसमें स्थिरता का गुण विद्यमान है। यह अपने इस स्थिर गुण के ही कारण लाखों वर्ष तक अपने असली रूप में रह चुकी है और आगे भी यह अपने शुद्ध रूप के साथ हमेशा तक रह सकती है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

आर्यसभ्यता का असली स्वरूप प्रकट करने के लिए हमको इस ग्रन्थ के तृतीय खण्ड में कई जातियों का इतिहास लिखना पड़ा है और कई स्थानों पर अपने आचार्यो, पूज्यों और मित्रों के मत की आलोचना भी करनी पड़ी है जिसके लिए हमें दुःख है। हमारा कभी स्वप्न में भी यह खयाल नहीं है कि संसार की कोई भी जाति, चाहे वह द्रविड़ हो या चित्पावन, मुलजमान हो या ईसाई और पारसी हो या बौद्ध, **असली मौलिक आर्यों के खून से सम्बन्ध नहीं रखती। हम संसार भर के मनुष्यों को आर्यों के ही वंशज समझते हैं।** इसी तरह हमारा यह भी ख्याल नहीं है कि आर्यो के साहित्य को केवल द्रविड़ी, चितपावनों, मुसलमानों ओर ईसाइयों ने ही दूषित किया है और उत्तरी, पश्चिमी और पूर्वी ब्राह्मणों, क्षत्रियों और अन्यों ने नहीं। प्रत्युत हमारा यह विश्वास है कि जिस प्रकार उपर्युक्त जातियों ने आर्यो के साहित्य को बिगाड़ा हैं उसी तरह अन्य जातियों ने भी बिगाड़ा है। इस बात को हमने तृतीय खण्ड ही में लिख भी दिया है। पर स्मरण रहे कि हमने जो कुछ लिखा है वह किसी को बदनाम करने या नीचा दिखलाने के लिए नहीं लिखा, प्रत्युत ऐतिहासिक दृष्टि से केवल वैदिक आर्यसभ्यता का वास्तविक स्वरूप दिखलाने के लिए ही लिखा है। इसलिए हम उन महानुभावों के समक्ष क्षमा के प्रार्थी हैं जो हमारी समालोचना से असन्तुष्ट हों। इसी तरह हम अपने पूर्वजों और मित्रों से भी क्षमा प्रार्थना करते हैं, जिनके मत की आलोचना हमने विवश होकर की है।

इसके सिवा हमको यह बात अच्छी तरह ज्ञात है कि वैदिक राजमार्ग में जमाई हुई जिन दुर्गम और दुर्जेय शिन्लाओं को हमने काटकर प्राचीन मौलिक आर्यों के घंटापथ को विस्तृत किया है उन सिद्धान्तरूपी शिलाओं से प्रभावित हुए विद्वानों की दृष्टि में हमने अनेक

शास्त्रीय बारीकियों को न समझा होगा, पर इसमें हमको कुछ भी असमन्जस नहीं है। हम खूब जानते हैं कि शास्त्रों का मत समझने में हमसे ग़लती हुई होगी। किन्तु इतना हमें विश्वास है कि **हमने आर्यसाहित्य और आर्यसभ्यता के अनुशीलन सेआर्यो के वास्तविक उद्देश्य और वास्तविक आचार व्यवहार को स्पष्ट करने में गलती नहीं की**। यदि यह सत्य हो तो यह बात निर्विवाद है कि हमने उसी उद्‌देश्य और उसी रहन सहन के प्रचारार्थं यह पुस्तक लिखी है, शास्त्रीय बारीकियों को समझाने के लिए नहीं। यही कारण है कि इस पुस्तक में प्रायः वेदों के ही सिद्धान्त लिये गये हैं और साम्प्रदायिक मतमतान्तरों से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्रों के सिद्धान्तों पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। वेदों के सिद्धान्त संग्रह करने में भी वेद भाष्यों से बहुत ही कम सहायता ली गई है, क्योंकि वेदों के भाष्य भी साम्प्रदायिक रंग मे ही रंगे हुए हैं ओर मनमानी कल्पनाओं से परिपूर्ण हैं। हमारा तो विश्वास है कि मत मत्तान्तरों और साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का जामा पहनकर कभी कोई भी विद्वान् वेदों की वास्तविक शिक्षा तक पहुँच ही नहीं सकता। इसलिए हम साम्प्रदायिक और शास्त्रज्ञ विद्वानों से भी क्षमा की याचना करते हैं और निवेदन करते हैं कि वे केवल हमारे शुद्ध उद्‌देश्य को दी देखें और अपने मन में जमे हुए भावों के वशीभूत होकर इसमें अपने उद्देश्य को ढूँढने का कष्ट न उठावें।

हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर कुछ लोग वेदों से भौतिक विज्ञान ओर योरोपीय ढंग की बातें निकालते हैं और जहाँ दूसरी ओर कुछ लोग पशुहिंसा, मद्यपान, व्यभिचार, अश्लील पूजन और ऐसी ही अन्य अनेकों ऊलजलूल और बुद्धिविपरीत साम्प्रदायिक बातें निकालते हैं, वहाँ तीसरी ओर से यह भी आवाज़ आती है कि वेदों में वर्तमान समयोपयोगी बातों का बिलकुल ही अभाव है। ये लोग कहते हैं कि इस समय पाश्चात्य विज्ञान ने जो उन्नति की है और विद्वानों ने जितना ज्ञान संग्रह किया है उसको देखते हुए वेदों में कुछ भी उन्नत विचार नहीं पाये जाते, इसलिए वेदों के पीछे पड़ना और उनके अध्ययन अध्यापन में समय नष्ट करना उचित नहीं है। जहाँ तक हमारा अनुभव है, हम देखते हैं कि इस तीसरे दल की बातों का असर देश के साधारण लोगों पर तो पड़ा ही है, पर बड़े से बड़े नेता भी इन बातो के प्रभाव से नहीं बचे। यही कारण है कि हिन्दू धर्म को मानते हुए भी वेदों के पठन पाठन का, वैदिक विज्ञान के विचार का और वैदिक व्यवस्था के प्रचार का सारे भारतवर्ष में कहीं पर भी——किसी भी पाठशाला, गुरुकुल, ऋषिकुल और विश्वविद्यलय में प्रबंध नहीं है। इन संस्थाओं के संचालकों को वेदों में समयोपयोगी शिक्षा की कोई सी विधि दिखलाई नही पड़ती। कुछ तो उनमें रेल तार का वर्णन न पाकर हताश हो गये हैं, कुछ सांप्रदायिक बातों को न देखकर चुप्पी साध गये हैं ओर कुछ यह समझकर उपेक्षा कर बैठे हैं कि वेदों में बर्तमान युग के अनुकूल शिक्षा नहीं है तथा योरप से समयोपयोगी शिक्षा मिल रही है, इसलिए वेदों में शिर मारने की आव यकता नहीं हैं। परन्तु हम बलपूर्वक कहते हैं कि वेदों की ही शिक्षा इस समय में भी समयोपयोगी है, योरप की नहीं।

वेदों में जो समयोपयोगी शिक्षा का अभाव दिखलाई पड़ता है उसका कारण वेद नहीं किंतु वेदों के भाष्यकार हैं। वेदों के अधिकांश भाष्यकारों ने वेदों से वेदों की वास्तविक शिक्षा

के प्राप्त करने का यत्न नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने वेदो से जबरदस्ती उन बातों के निकालने का यत्न किया है जो उनको प्रिय थीं, जिनमें उनका मतोरन्जन था और जिनसे वे प्रभावित थे। यही कारण है कि लोगों को वेदों के असली स्वरूप का दर्शन नहीं हो पाता। बहुत दिन से देशी और विदेशी सभी भाष्यकार वेदों को चक्कर में डाले हुए हैं। ऐसी दशा में लोगों की जो वेदों से उपेक्षा दिखलई पढ़ती है वह स्वाभाविक ही है। परंतु हम देखते हैं कि अब समय फिरा है, संसार में वेदानुकूल वायुमण्डल तैयार होने लगा है और अब एक प्रकार से संसार स्वयं वेदों की वास्तविक शिक्षा की ओर आने लगा है, इसलिए हमने वेदों की वास्तविक शिक्षा को ही संसार के सामने उपस्थित करने का यत्न किया है, अपनी ओर से नमक मिर्च लगाने का नहीं। हम नहीं जानते किहमको इसमें कहॉ तक सफलता हुई है, पर इतना तो हम कह सकते हैं कि जब हम जैसे वैदिक ज्ञानविहीन क्षुद्र व्यक्ति भी वेदों से एक सार्वभौम योजना की सामग्री प्राप्त कर सकते हैं तो वे विद्वान् जो ज्ञानविज्ञान, भाषाशास्त्र, इतिहास, धर्म और राजनीति के ज्ञाता हैं यदि वेदों का स्वाध्याय करें तो वे वेदों से बहुत कुछ लाकोपयोगी शिक्षा का पता लगा सकते हैं, यह हमारा दृढ़ विश्वास है। यही कारण है कि हमने इस ग्रन्थ में मुख्य विषय को चतुर्थ खण्ड में और प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय खणड में वेदों की महत्ता का ही वर्णन किया है। इस वर्णनक्रम का यही प्रयोजन है कि लोगों को अच्छी तरह विदित हो जाय कि वेद आ्रादिमकालीन हैं, अपौरुशेय हैं, अतएव उनमें जो सार्वभौम शिक्षा दा गई है वह निभ्रांत है और संसार के समस्त मनुष्यों के लिए उपयोगी तथा प्राणो मात्र के जिए कल्याणकारी है।

हमारी मूढ़ सेवा

हम मानते हें कि जिन विषयों का समावेश इस ग्रन्थ में किया गया है उन पर ग्रन्थ लिखने की योग्यता हम में नहीं है। हम तो ऐसे विषयों ही ओर संकेत करने के भी अधिकारी नहीं हैं। इसलिए हमको उचित न था कि हम ऐसे महान् विषयों पर कलम उठाते।पर हम देखते हैं कि आज पचास साठ वर्ष से इस देश में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक चर्चा हो रही है और इन सभी चर्चाओं में इस ग्रन्थ से सस्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी बातों की आवश्यकता भी पड़ती है, पर जहाँ तक हमें ज्ञात है आज तक किसी ने समस्त बातों का सामंजस्य करके कोई ग्रन्थ तो क्या चार लाइनें भी लिखने की कृपा नहीं की। जिन बातों का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया है क्या बिना उन पर प्रकाश डाले, बिना उनको समझे और बिना उनको हल किये कोई भी धर्म, कोई भी समाज और कोई भी राष्ट्र किसी प्रकार की पक्की, स्थिर और सुखदारी व्यवस्था कर सकता है ? कभी नहीं! हरगिज नहीं!! ऐसी दशा में ग्रन्थ नहीं, केवल एक प्रकार की विषय सूची उपस्थित करके यदि हमने विद्वानों के सामने धृष्टता की है तो यह कहने में हर्ज नहीं कि हमारी यह मूढ सेवा क्षमा के योग्य है।

हमारा विश्वास है कि जब तक भारतीय विद्वान् हमारी इन सूचनाओं पर यथोचित ध्यान न देंगे, इस पुस्तक में दिए इये समस्त विषयों पर अच्छा प्रकाश न डालेंगे और उन समस्त वैज्ञानिक, सामाजिक और राजनैतक भागों में न घूम लेंगे जिनकी आर्य वैदिक सभ्यता

के प्रचार से आवश्यकता पड़ना संभव है तब तक संसार की सभ्य जातियों में वैदिक आर्य सभ्यता का प्रचार नहीं हो सकता और न संसार की जटिल समस्याओं की उलझन ही सुलझ सकती है। इसलिए यद्यपि यह सूची परिपूर्ण नहीं कही जा सकती तथापि त्याज्य और उपेक्ष्य भी नहीं है, यही हमारी विनय और प्रार्थना है।

हमने इस ग्रंथ के उपयोगी और आवश्यक भागों को अठारह बीस वर्ष पूर्व लिखा था और 'अक्षरविज्ञान' नामी अपनी एक पुस्तक में इसका ज़िक्र भी कर दिया था, पर छपाकर प्रकाशित नहीं किया था; इसका कारण यही था कि हम अपनी कमजोरियों को समझते थे। परन्तु जिस समय 'अक्षर विज्ञान' छपकर बाहर निकला तो उसकी प्रशंसा कई पूज्य विद्वानों ने की। कई पत्र और पत्रिकाओं ने उस पर लेख लिखे, उर्दू, अंगरेज़ी और बंगला में अनुवाद हुए और हमारी स्वीति भी माँगी गई। भारतवर्ष का इतिहास, सृष्टि विज्ञान, वृक्षों में जीव और पुनर्जन्म आदि पुस्तकों में कहीं सूचनाएं और कहीं उद्धरण दिये गये और दो एक संस्थाओं ने उपाधियों के भेजने की भी कृपा की। ऐसी दशा में हमारे लिए बहक जाना और यह विचार करना स्वाभाविक था कि जिस सामग्री को हमने बीस वर्ष से संग्रह कर रखा है उसको सुव्यवस्थित रूप में सबके सातने उपस्थित करना अच्छा है। संभव है उसमें कुछ भी सत्यांश हो और उससे संसार को लाभ पहुँचे, अथवा भूल ज्ञात होने पर हमारा ही भ्रम संशोधित हो जाय। बस, इसी शुद्ध प्रेरणा ने हमसे इस ग्रन्थ को लिखवाया है, इसलिए भी हम क्षमा के ही योग्य हैं।

कृतज्ञता

हमने इस ग्रन्थ के लिखने में अनेकों ग्रन्थों, पत्रों, पत्रिकाओं, व्याख्यानों, शास्त्रार्थों और प्रासंगिक वार्तालापों से सहायता प्राप्त की है, इसलिए हम उन सभी ग्रंथकारों, पत्रकारों, व्याख्यानदाताओं और सत्संगी महानुभावों के कृतज्ञ हैं। सबसे अधिक कृतज्ञ हम बंबई निवासी सेठ श्री शूरजी वल्लभदास वर्मा के हैं जिनकी सहायता से हम इस ग्रन्थ के लिखने और छपाने में समर्थ हो सके हैं। अन्त में हम समस्त ग्रन्थकारों, पत्रकारों, व्याख्यानदाताओं और वाद विवाद करनेवाले धार्मिक और राजनैतिक विद्वानों से सानुरोध प्रार्थना करते हें कि वे इस ग्रन्थ की त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर केवल इसके सिद्धान्तों की प्रचारात्मक आलोचना करें, जिससे शीघ्र ही इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले कई उत्तम ग्रन्थ योग्य विद्वानों की कलम से लिखे जायें और परमात्मा की अतुल दया से इस वैदिक व्यवस्था का संसार में शीघ्र प्रचार हो जाय, यही हमारी अन्तरेच्छा है। इयोम् शम्।

कानपुर
वैशाख शुक्ल पूणिमा संवत्१६८७

निवेदक---
रघुनन्दन शर्मा

वेदोत्पत्ति और सृष्टि के काल का परिगणन

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति प्रकरण से मात्र आर्यभाषा के अंश के साथ)

प्रश्न–वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गये हैं?

उत्तर–,क वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नव सौ, छहत्तर अर्थात्(१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और यह संवत् ७७ सतहत्तरवाँ वर्त्त रहा है, ख्ेसा जानना चाहिये। इतना ही समय वर्तमान कल्पसृष्टि का है।,

प्रश्न–यह कैसे निश्चय हो कि इतने ही वर्ष वेद और जगत् की उत्पत्ति में बीत गये हैं।

उत्तर–यह जो वर्त्तमान सृष्टि है, इसमें सातवें (७) वैवस्वत मनु का वर्त्तमान है, इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं। १–स्वायम्भुव, २–स्वारोचिष, ३–औत्तमि, ४–तामस, ५–रैवत, ६–चाक्षुष ये छः तो बीत गये हैं और ७ सातवाँ वैवस्वत वर्त्त रहा है, और सावर्णि आदि ७ सात मन्वन्तर आगे भोगेंगे। ये सब मिलके १४ चौदह मन्वन्तर होते हैं।और ,कहत्तर चतुर्युगियों का नाम मन्वन्तर धरा गया है, सो उसकी गणना इस प्रकार से है कि (१७२८०००) सत्रह लाख, अट्ठाईस हजार, वर्षों का नाम सतयुग रक्खा है। (१२९६०००) बारह लाख, छानवे हजार वर्षों का नाम त्रेता। (८६४०००) आठ लाख, चौंसठ हजार वर्षों का नाम द्वापर और (४३२०००) चार लाख, बत्तीस हजार वर्षों का नाम कलियुग रक्खा है। तथा आर्यों ने एक क्षण और निमेष से लेके ,क वर्ष पर्यन्त भी काल की सूक्ष्म और स्थूल संज्ञा बाँधी है। और इन चारों युगों के (४३२००००) तियालीस लाख, बीस हजार वर्ष होते हैं, जिनका चतुर्युगी नाम है।

एकहत्तर (७१) चतुर्युगियों के अर्थात् (३०६७२००००) तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्षों की ,क मन्वन्तर संज्ञा की है, और ऐसे–ऐसे छः मन्वन्तर मिल कर अर्थात् (१८४०३२००००) एक अरब, चौरासी करोड़, तीन लाख, बीस हजार वर्ष हुए, और सातवें मन्वन्तर के भोग में यह (२८) अट्ठाईसवीं चतुर्युगी है। इस चतुर्युगी में कलियुग के (४९७६) चार हजार, नवसौ, छहत्तर वर्षों का भोग हो चुका है और बाकी (४२७०२४) चार लाख, सत्ताईस हजार, चौबीस वर्षों का भोग होने वाला है। जानना चाहिये कि (१२०५३२९७६) बारह करोड़, पांच लाख, बत्तीस हजार, नव सौ, छहत्तर वर्ष तो वैवस्वत मनु के भोग हो चुके हैं और (१८६१८७०२४) अठारह करोड़, एकसठ लाख, सत्तासी हजार, चौबीस वर्ष भोगने के बाकी रहे हैं। इनमें से यह वर्तमान वर्ष (७७) सतहत्तरवाँ हैं, जिसको आर्य लोग विक्रम का (१९३३) उन्नीस सौ तेतीसवाँ संवत् कहते हैं।(यह गणना ग्रंथरचना के समय की है–सं0)–––

मनुस्मृति के अनुसार

ब्रह्मा के दिन–रात का और चारों (सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि) युगों का जो

परिमाण है, उसे आप लोग संक्षेप में क्रमशः सुनें। चार हजार वर्ष सत्ययुग का कालपरिमाण कहा है और उतना ही सत्ययुग के संध्या और संध्याश का परिमाण है अर्थात् तीनों को मिलाकर १२००० वर्ष का परिमाण है।

सत्ययुग की सन्धि और संध्यांश के सहित सत्ययुग के कालपरिमाण में से १०००–१००० तथा सन्ध्या और सन्ध्यांश में से १००–१०० वर्ष प्रत्येक में कम करने से त्रेता, द्वापर और कलियुग का काल परिमाण होता है।,

जो यह मनुष्यों के चार युगों का कालपरिमाण (१२०००) बतलाया गया है, वह १२००० चारों युगों का सम्मिलित काल देवों का एक युग होता है। देवों के एक सहस्र युग ब्रह्मा के एक दिन के बराबर हैं और उतना ही काल रात का भी जानना चाहिये। देवों के १००० युग के बराबर ब्रह्मा का पुण्य दिन और उतने ही परिमाण का ब्रह्मा की रात्रि होती है। उसे जो लोग जानते हैं, वे अहोरात्र के ज्ञाता कहे जाते हैं।,

जो पहले १२००० वर्षों के बराबर 'देवों का एक युग' कहा गया है, उसके इकहत्तर गुना कालपरिमाण को इस शास्त्र में 'मन्वन्तर' कहा गया है। मन्वन्तर, सृष्टि और प्रलय ये सभी असंख्य हैं। ब्रह्मा क्रीडा करते हुए इस संसार की बार–बार सृष्टि करते हैं।
ब्राह्मदिन और ब्राह्मरात्रि अर्थात् ब्रह्म जो परमेश्वर उसने संसार के वर्तमान और प्रलय की संज्ञा की है, इसलिये इसका नाम ब्राह्मदिन है। इसी प्रकरण में मनुस्मृति के श्लोक साक्षी के लिये लिख चुके हैं, सो देख लेना। इन श्लोकों में दैववर्षों की गणना की है, अर्थात् चारों युगों के बारह हजार (१२०००) वर्षों की 'दैवयुग' संज्ञा की है। इसी प्रकार असंख्यात मन्वन्तरों में कि जिनकी संख्या नहीं हो सकती, अनेक बार सृष्टि हो चुकी है और अनेक बार होगी। सो उस सृष्टि को सदा से सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सहज स्वभाव से रचता, पालन और प्रलय करता है और सदा ऐसे ही करेगा। क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति, वर्तमान और प्रलय और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों को मनुष्य लोग सुख से गिन लें, इसीलिये यह ब्राह्मदिन आदि संज्ञा बाँधी है। और सृष्टि का स्वभाव नया पुराना प्रति मन्वन्तर में बदलता जाता है, इसीलिये मन्वन्तर संज्ञा बाँधी है। वर्त्तमान सृष्टि की कल्पसंज्ञा और प्रलय की विकल्प संज्ञा की है।

और इन वर्षों की गणना इस प्रकार से करना चाहिये कि (एकं दशशतं चौव०) एक (१), दश (१०), हजार (१०००), दश हजार (१००००), लाख (१०००००), अयुत (१००००००), करोड़ (१०००००००), अर्बुद (१००००००००), वृन्द (१००००००००००), खर्व (१००००००००००), निखर्व (१०००००००००००), शंख (१००००००००००००), पदम (१०००००००००००००), सा•र (१००००००००००००००), अन्त्य (१०००००००००००००००), मध्य (१००००००००००००००००), और पराद्धर्य (१०००००००००००००००००) और

दश–दश गुणा बढ़ाकर इसी गणित से सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिषग्रन्थों में गिनती की है। (सहस्रस्यप्र०) सब संसार की सहस्र संज्ञा है तथा पूर्वोक्त ब्राह्मदिन और रात्रि की भी सहस्रसंज्ञा ली जाती है, क्योंकि यह मन्त्र सामान्य अर्थ में वर्तमान है। सो हे परमेश्वर! आप इस हजार चतुर्युगी का दिन और रात्रि को प्रमाण अर्थात् निर्माण करने वाले हो।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कालगणनाः

इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में यथावत् वर्षों की संख्या आर्य लोगों ने गिनी है, सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज पर्यन्त दिन–दिन गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं अर्थात् परम्परा से सुनते–सुनाते लिखते–लिखाते और पढ़ते–पढ़ाते आज पर्यन्त हम लोग चले आते हैं। यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है, और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है। क्योंकि आर्य लोग नित्यप्रति 'ओं तत्सत्' परमेश्वर के इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण करके कार्यों का आरम्भ और परमेश्वर का ही नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं कि आनन्द में आज पर्यन्त परमेश्वर की सृष्टि और हम लोग बने हुए हैं, और बहीखाते की नाईं लिखते–लिखाते और पढ़ते–पढ़ाते चले आये हैं कि पूर्वोक्त ब्राह्मदिन के दूसरे प्रहर के ऊपर मध्याह्न के निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वत मनु के भोग होने को बाकी हैं उतने ही मध्याह्न में बाकी रहे हैं, इसीलिये यह लेख है–(श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे०)

कालगणना की भारतीय परम्पराः यह वैवस्वतमनु का वर्त्तमान है, इसके भोग में यह (२८) अट्ठाईसवाँ कलियुग है। कलियुग के प्रथम चरण का भोग हो रहा है तथा वर्ष, ऋतु, अयन, मास, पक्ष, दिन, नक्ष=, मुहूर्त, लग्न और पल आदि समय में हमने फलाना काम किया था और करते हैं, अर्थात् जैसे विक्रम संवत् १६३३ फाल्गुण मास, कृष्णपक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हमने लिखी है, इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्यन्त करते और जानते चले आये हैं। जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं, वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते–घटाते चले जाते हैं। इसी प्रकार आर्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं। और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एकसा वर्त्तमान हो रहा है। और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है, किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है। इसीलिये इसको अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य नहीं हो सकता। क्योंकि जो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके बराबर मिती वार लिखते न आते तो इस गिनती का हिसाब ठीक–ठीक आर्य लोगों को भी जानना कठिन होता, अन्य मनुष्यों का तो क्या ही कहना है। और यह भी सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भ से लेके आज पर्यन्त आर्य लोग ही बड़े–बड़े विद्वान् और सभ्य होते चले आये हैं।

विधर्मियों के द्वारा विद्यापुस्तकों का नाशः जब जैन और मुसलमान आदि लोग इस देश के इतिहास और विद्यापुस्तकों का नाश करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ कर लिया, और जो पुस्तक ज्योतिषशास्त्र के बच गये हैं उनमें और उनके अनुसार जो वार्षिक पञ्चाङ्गपत्र बनते जाते हैं इनमें भी मिती से मिती बराबर लिखी चली आती है, इसको अन्यथा कोई नहीं कर सकता। यह वृत्तान्त इतिहास का इसलिये है कि पूर्वापर काल का प्रमाण यथावत् सब को विदित रहे और सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, तथा वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की गिनती में किसी प्रकार का भ्रम किसी को न हो, सो यह बड़ा उत्तम काम है। इसको सब लोग यथावत् जान लेवें। परन्तु इस उत्तम व्यवहार को लोगों ने टका कमाने के लिये बिगाड़ रक्खा है, यह शोक की बात है। और टके के लोभ ने भी जो इसके पुस्तक व्यवहार को बना रक्खा, नष्ट न होने दिया, यह बड़े हर्ष की बात है। जो चारों युगों के चार भेद और उनके वर्षों की घट–बढ़ संख्या क्यों हुई है, इसकी व्याख्या आगे करेंगे, वहाँ देख लेना चाहिये। यहाँ इसका प्रसङ्ग नहीं है, इसलिये नहीं लिखा।

विलसनादि के वेदविषयक विचार भ्रान्तिमूलकः इससे जो अध्यापक विलसन साहेब और अध्यापक मोक्षमूलर साहेब आदि यूरोपखण्डवासी विद्वानों ने बात कही है कि– वेद मनुष्य के रचे हैं, किन्तु श्रुति नहीं है, उनकी यह बात ठीक नहीं है, और दूसरी यह है–कोई कहता है (२४००) चौबीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए, कोई (२९००) उनतीस सौ वर्ष, कोई (३०००) तीन हजार वर्ष और कोई कहता है (३१००) ,कतीस सौ वर्ष वेदों को उत्पन्न हु, बीते हैं, उनकी यह भी बात झूठी है। क्योंकि उन लोगों ने हम आर्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या का लेख और संकल्प पठनविद्या को भी यथावत् न सुना और न विचारा है, नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उनको नहीं होता। इससे यह जानना अवश्य चाहिये कि वेदों की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है, और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं, उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जिन–जिन ने अपनी–अपनी देश भाषाओं में अन्यथा व्याख्यान वेदों के विषय में किया है, उन–उन का भी व्याख्यान मिथ्या है। क्योंकि जैसा प्रथम लिख आये हैं जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी, तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे।

दयानन्द दशमी मनाई

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास द्वारा मिति फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी संवत् २०८0 विक्रमी मंगलवार दिनांक ५ मार्च २०२४ की सायंकाल ५ बजे से महर्षि दयानन्द सरस्वती की दो सौ वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष में विश्वभर में आयोजित हो रहे कार्यक्रमों के क्रम में महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन परिसर के महर्षि दयानंद उद्यान में महर्षि जन्म जयन्ती उत्साह पूर्वक मनाई गई।

कार्यक्रम के आरंभ में ५१ कुण्डीय यज्ञ आचार्यश्री वरुणदेवजी के सानिंध्य में आयोजित किया गया जिन पर दोसौ से भी अधिक यज्ञकर्ता बैठे और श्रद्धा के साथ यज्ञ सम्पन्न किया।

यज्ञो परान्त माता मालतीजी त्रिपाठी ने ऋषि महिमा का एक गीत' ऋषि दयानंद सरस्वती को बारंबार प्रणाम उनका ऋणी है यह संसार' प्रस्तुत किया। श्री विक्रम सिंह आर्य ने 'सौ बार जन्म लेंगे सौ बार फना होंगे, एहसान दयानंद के फिर भी न अदा होंगे' प्रस्तुत किया। नगर आर्यसमाज गुलाबसागर जोधपुर के संरक्षक एवं वयोवृद्ध आर्यसमाज श्री जयदेव जी अवस्थी ने 'देवदयानंद ने वो काम किया है, आर्यों काजग में ऊंचा नाम किया है' सुनाया और बीच–बीच में जोशीले शेरों और घटनाओं का उल्लेख भी किया। सरदारपुरा आर्यसमाज के प्रधान श्री लक्ष्मण प्रसाद जी वर्मा ने 'यह कुर्सी मजा न देगी यह शासन मजा न देगा, सत्याचरण नहीं तो जीवन मजा न देगा' प्रस्तुत किया। जोधपुर के वरिष्ठ आर्यसमाजी श्रीरामस्वरूप आर्य ने 'दीनों के रखवाले निर्बल जन के प्राणाधार प्राणाधार, स्वामी दयानंद की जय जय कार जय जय कार' सुनाया। न्यास प्रधान श्री विजय सिंह जी भाटी ने भी भजन प्रस्तुत किया–'पीले पीले पीले पीले ओम नाम का प्याला बन जा तू मतवाला'। माता शांतिदेवी जी ने ऋषि महिमा का गीत' दुनिया वालों देव दयानंद दीप जलाने आया था, भूल चुके थे राहें अपनी वह दिखलाने आया था' गाया।

यज्ञ ब्रह्मा एवं मुख्य वक्ता आचार्य श्री वरुणदेवजी ने बताया कि आधुनिक शिक्षा अधिकांशतया नौकर बनाती है और वेद की शिक्षा मालिक बनती है। आचार्यजी ने संकेत किया कि जो अपनी इच्छा से कार्य करता है वह मालिक होता है और जो दूसरों की–भले ही माता–पिता की इच्छा से कार्य करता है वह नौकर होता है।

हमें ज्ञान अर्जित करना चाहिए ताकि हम ज्ञान के अनुरूप अपनी इच्छा से कर्म कर सकें। यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अपनी इच्छा से जो कार्य करें वह हर दृष्टि से उचित ही हो गलत ना हो सके।

आचार्य श्री ने बताया कि महर्षि दयानंद सरस्वती ने हमें यह बताया कि हम सब मालिक कैसे बन सकते हैं! जिनको मालिक बनना है वे यह जानने के लिए महर्षि दयानंद

को जानने का प्रयास करें। महर्षि के बताए ज्ञान से मनुष्य को स्वतंत्रता प्राप्त होती है और विचार करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है जिससे वह मालिक बन सकताहै।

आचार्यजी ने कार्यक्रम में उपस्थित माता–पिताओं से कहा कि वे अपने बच्चों की परवरिश करते समय सावधान रहें। परमेश्वर के विषय में उन्हें लोभ या लालच के मार्ग पर नहीं चलावें। उनके प्रश्नों का समुचित उत्तर देवें और उनके प्रश्नों को प्रोत्साहित करें। विशेष करके प्रत्येक कार्य को करने से पहले बच्चों को 'क्यों' प्रश्न करना बताएँ और 'क्यों' का संतोष जनक कारण समझने के बाद 'कैसे' अर्थात उस कार्य को कैसे किया जाए इसके बारे में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न करें।

आचार्य जी ने बताया कि हमारे गुलाम बनाने के दो साधन है– भय और लालच! आचार्यजी ने उदाहरण देते बताया कि मुसलमानों ने तलवार के द्वारा भय दिखा कर हिन्दुओं को गुलाम बनाया और ईसाइयों ने लालच देकर कि हम कोढ़ी को चंगा करेंगे, गरीबी दूर करेंगे,नौकरी देंगे आदि लालच देकर के गुलामबनाया। यदि महर्षि दयानंद नहीं होते तो आज सारा भारत इसाईयों मुसलमान बन चुका होता, हिंदू कोई होता ही नहीं! महर्षि ने एक धक्का दिया जिसका परिणाम आज हिंदुओं का सुरक्षित रहना है। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश लिखकर जो धक्का ईसाई और मुसलमानों को लगाया उसी के कारण हिंदू सुरक्षित है।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने हमें बताया कि गुलाम बनने से बचने का एकमात्र मार्ग वेद विद्या है, जिससे उचित अनुचित का पता चलता है, सही गलत का पता चलता है, विवेक जागृत होता है। आचार्यजी ने आज के कार्यक्रम का उदाहरण देते हुए कहा कि अधिकांश यजमान लोग किसी के कहने से ही आए हैं, स्वतंत्र इच्छा से नहीं आए हैं। प्रत्येक कार्य को करने से पहले 'क्यों' और 'कैसे' का उत्तर प्राप्त नहीं किया तो किए गए कार्य के अच्छा होने का पता नहीं लगेगा। सभी उपस्थित जनों से आचार्यजी ने कहा कि जीवन में प्रत्येक कर्म को करने से पूर्व 'क्यो' और 'कैसे' का उत्तर जानकर ही वह कर्म करें।

आचार्यजी ने पोप लीला और लोप लीला से बचने का आवाहन किया। पोप लीला का स्पष्टीकरण पाखंड के रूप में दिया और लोप लीला बताया करणीय कर्मों को नहीं करना। अर्थात् कर्तव्य के लोप करने को लोप लीला बताया। आचार्यजी के व्याख्यान के उपरांत ब्रह्मयज्ञ हुआ। पश्चात् न्यास मंत्री आर्य किशनलाल जी गहलोत ने सभी आगंतुकों का धन्यवाद किया और ऋषि लंगर के लिए आमंत्रित किया। ऋषि लंगर का संपूर्ण व्यय श्री युत् अखिलेशजी सोनी ने वहन किया।

ओ३म्

वासंती नवसस्येष्टि पर्व

होलिकोत्सव की मंगलमय बधाई व शुभकामनाएँ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास
महर्षि दयानन्द मार्ग, रातानाडा, जोधपुर

नूतन वर्षाभिनन्दन और बधाईयाँ

(सृष्टिसंवत: सृष्टि के प्रथम यज्ञ से)

१,९६,०८,५३,१२५

श्रीमन्विक्रम सम्वत

२०८१

श्रीमद्दयानन्दाब्द

२००

Postal Reg. Jodhpur/434/2023-2026

Date of Posting 9,10-03-2024
Date of Print 8-3-2024

अमर शहीद राजगुरु, भगतसिंह और सुखदेव को अंग्रेज पुलिस सुपरिंटेंडेंट सांडर्स की हत्या का दोषी ठहराया गया। इनकी फाँसी के लिए २४ मार्च १९३१ का दिन तय हुआ था। किन्तु क्रूर ब्रिटिश सरकार द्वारा माहौल बिगड़ने के भय से तय तिथि से एक दिन पूर्व २३ मार्च १९३१ के दिन ही फाँसी दे दी गई। तीनों सपूत मातृभूमि पर न्यौंछावर हो गए। क्यों???

स्वतंत्रता संगाम के शहीदों में महर्षि दयानंद और आर्यसमाज से प्ररित ८० प्रतिशत शहीदों में शामिल शहीदों ने शोषणरहित समतामूलक समाज का सपना देखा था, भ्रष्टाचार, भुखमरी, असमानता और विभाजक कारकों का नहीं। यह सपना हमसे कुर्बानी मांग रहा है। प्राणों की नहीं! मात्र कुछ सुखों की! क्या हम तैयार है ???

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर।

भगतसिंह कैसे बनते हैं: –पूज्य पिताजी, नमस्ते! मेरी जिन्दगी का मकसद ए आला यानी आजादी–ए–हिन्द अस्ल के लिए वक्फ हो चुकी है। इसलिए मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियावी खाहशात वायसे कशिश नहीं है। आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था, तो बापूजी ने **मेरे यज्ञोपवीत के वक्त** ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूँ। उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएंगे। आपका ताबेदार भगतसिंह। वर्ष १९२३ ईस्वी।

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर 0291-2516655 के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू की पोल जोधपुर फोन नं. 9829392411 से मुद्रित,

सम्पादक फोन नं. 9460649055

Book-Post

जिला- नई दिल्ली
प्रान्त- नई दिल्ली